राष्ट्र-पतन

अथवा

भारतीय स्वाधीनता की सन्ध्या

मूल लेखक
'उषाकाल' के प्रसिद्ध लेखक
स्व० श्री हरिनारायण आप्टे

अनुवादक
ठाकुर राजबहादुरसिंह

राजपाल एण्ड सन्ज़
नई सड़क — दिल्ली

मूल्य
दो रुपये आठ आने

विजय प्रेस, देहली

—दो शब्द—

स्व० श्री हरिनारायण आप्टे का नाम मराठी उपन्यासकारों में बहुत ऊँचा स्थान रखता है। सामाजिक और विशेषकर ऐतिहासिक उपन्यासों के लिखने में आप सिद्धहस्त थे। महाराष्ट्र में आपकी रचनाएँ हर घर, स्कूल और लाइब्रेरी में बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। आपकी पुस्तकें इतिहास का भी काम देती हैं और रोचक उपन्यास का भी। आपने सारे महाराष्ट्र का इतिहास 'उषाकाल' से आरम्भ करके अपने भावी उपन्यासों में हिन्दू-राष्ट्र के अधःपतन तक का पूरा वर्णन किया है। इन उपन्यासों द्वारा नवयुवकों के हृदयों में देशभक्ति की उमंगें तथा राष्ट्र एवं जाति को उठाने की जो महत्वाकांक्षाएँ भरने का सफल प्रयत्न किया गया है, उसकी तुलना अंग्रेजी के लेखक स्काट से की जा सकती है। जहां तक उपन्यास की दिलचस्पी का सम्बन्ध है, श्री हरिनारायण आप्टे ने जिन बारीकियों से प्रत्येक स्थल का वर्णन किया है वहां तक शायद ही कोई औपन्यासिक पहुंचा हो।

प्रस्तुत उपन्यास "राष्ट्र-पतन" अथवा "भारतीय स्वाधीनता की सन्ध्या" उस समय का वर्णन करता है जब भारतवर्ष में यवनों ने अपना जाल फैलाया और षड्यन्त्रों द्वारा हिन्दुस्तान के राजाओं में फूट डालकर राजा जयचन्द के सहयोग से महाराज पृथ्वीराज पर आक्रमण किया और अपनी कूटनीतिज्ञता से इस

देश को पादाक्रांत किया। उन घटनाओं का वर्णन, जिन्होंने फूट का आरम्भ किया, बड़ा हृदय को द्रवित करने वाला है। अपने राष्ट्र की कमज़ोरियाँ देख कर दारुण दुःख होता है और दिल रो पड़ता है।

निस्संदेह यह पुस्तक हिन्दी-भाषा में भी वही मान और आदर का स्थान पाएगी जो इसे मराठी-साहित्य में प्राप्त हुआ है। हिन्दू-राष्ट्र के नवयुवकों में जिस नवीन-स्फूर्ति का संचार हो रहा है, उसे प्रोत्साहन देने में यह अवश्य सहायक सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

अनुक्रमणिका

★

पहला परिच्छेद

दो बहनें

राजा अनंगपाल बड़े आश्चर्य से अपने दोनों दौहित्रों की ओर देख रहे थे। सूक्ष्मता से देखने वाले को उस दृष्टि में कुछ दुःख के मिश्रण का आभास होता। और वैसा आभास वृद्ध पुरोहित रामगुरु को हुआ भी। राजा ने अपनी दोनों जांघों पर दोनों दौहित्रों को बैठाकर उनसे पूछा कि कौन किस तरफ़ बैठना चाहता है। पृथ्वीराज बोले—"मुझे बाईं जांघ पर बैठने दीजिए तथा जयचन्द को दाहिनी ओर बैठाइये।" जयचन्द बोले—"नहीं, पृथ्वीराज को दाहिनी तरफ़ बैठाइए, मैं बाईं ओर बैठूँगा।" तो नाना की कौन-सी जांघ पर कौन बैठे, इस बात पर वाद-विवाद और खींचातानी होती देखकर राजा अनंगपाल, रामगुरु पुरोहित, कमला देवी और विमला देवी को बहुत हँसी आ रही थी। बाल-लीला थी वह, उसे देखकर किसे आनन्द न आता? दूर पर दास-दासियाँ खड़ी थीं, उन्हें भी हँसी आ रही थी, पर राजा के सम्मुख कैसे हँसें? इसलिए मुँह फेर कर वे सब अपनी हँसी को छिपाने का प्रयत्न कर रहे थे।

लड़ाई बहुत बढ़ गई और एक दूसरे का वस्त्र खींचने लगे। यह देखकर रामगुरु पुरोहित बोला—"बच्चो! किस लिए लड़ाई करते हो? अगर आज कुमार धनंजयराज होता तो तुम दोनों को

दूर हटा कर कहता—"तुम दोनों नीचे बैठो, वहां बैठने का अधिकार मेरा है।"

वृद्ध गुरु की बात सुन कर अनंगपाल ने एकदम उनकी तरफ़ देखा और एक दीर्घ सांस खींचकर कहा—"गुरुजी, क्यों उसका नाम लेते हो ?" राजा सांस खींच कर ही न रह गए बल्कि उनकी आंखों में पानी भी आ गया। कमला भी खिन्न हो गई, उसकी आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। उसने कहा--"क्यों उसका नाम लेते हैं ? वह अगर आज होता तो.........."। उससे अधिक न बोला गया।

सिर्फ विमला की ही अलग हालत थी। उसके चेहरे पर क्रोध और मत्सर की छटा दिखाई पड़ी। वह बोली—"यह क्या गुरुजी ? आप बार-बार धनंजय का ही नाम लेते रहते हैं। अगर वह होता तो आपको यहां से बाहर निकाल देता। धनंजय होता तो पिता जी ऐसा करते ? आप जो यह कहते हैं उसका मतलब ही क्या ? हमने क्या इसका अनुष्ठान किया था कि धनंजय मर जाय। पुरोहितों को बहुत........"

परन्तु कमला ने बीच में ही विमला से कहा— "दीदी, दीदी, तू यह क्या—और किसको कह रही है ? जिसका आज वशिष्ठ के समान अधिकार है—उस वृद्ध पुरोहित रामगुरु को तू जो यह सब कह रही है उसका कुछ भान भी है ? व्यर्थ में इतना गुस्सा क्यों ? पुरोहित जी ने तो कह ही दिया, पर जिस समय ये दोनों लड़ रहे थे उस समय मेरे भी ओंठों पर यही शब्द आए थे "बदमाशो, उस

गोद का असली मालिक तो गया, इसीलिए तुम्हारी यह लड़ाई है! दीदी, कुमार धनंजय कितना अच्छा था! .....”

“अच्छा, अच्छा तू भी गुरु जी के समान है, क्या मुझे नहीं मालूम? तुम लोग बार-बार कहते हो कि वह ऐसा था—वैसा था। क्या मैं उसे बुरा कह रही हूँ। था, बहुत अच्छा था। पर उस बात को कह कर मेरे जयचन्द को नीचा क्यों दिखा रहे हो? तू अपनी आंखों के सामने जयचन्द को नहीं देखना चाहती, क्या यह बात मेरी समझ में नहीं आती? लेकिन मैं डरती नहीं!”

“छिः! बहिन, हम यहां आए किस प्रसंग से और तू बोलती क्या है? मुझे! और तेरा जयचन्द आंखों के सामने न भाये? किसलिए नहीं? मुझे तो जैसा पृथ्वीराज वैसा ही जयचन्द। एक बार मैं उसको अपने पास कर लूंगी और पृथ्वीराज को दूर।”

“हां हां, बड़ी भोली है तू! अरे क्या मुझे तेरी चालाकियां समझ में नहीं आतीं? सब समझती हूँ!......”

राजा अनंगपाल इतनी देर तक उनकी तरफ़ निस्तब्धता से देख रहे थे। उनका चेहरा खिन्न हो गया था। अब उस पर दुःख की एक लकीर खिंची हुई थी। वे दोनों छोटे बच्चे भी अपनी खींचातानी बंद करके चकित हो अपनी-अपनी माताओं की ओर देख रहे थे।

विमला की बड़बड़ाहट रुकी नहीं थी। उसे रोकने के लिए अंत में राजा बोले—“विमला, तू लड़ाई पर क्यों तुली हुई है? मेरे लिए तो ये दोनों एक समान हैं। अगर वह होता तो क्या मैं इन दोनों को दूर रखता! दो दिन के लिए तुम दोनों आई हो,

लड़ाई-झगड़ा करके और रूठ कर मत जाओ।"

परन्तु विमला पर इन बातों का कोई असर न हुआ। वह अपने पिता से बोली—"पिता जी, तुम भोले हो, तुम्हें यह सब कपट कुछ समझ में नहीं आता। इसके मन में क्या है, यह तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है। पर जब तक मैं जीवित हूँ तब तक इसकी खट-पट नहीं चलने दूँगी। इसका पुत्र बड़ा अच्छा, यह बहुत अच्छी और हम दोनों बुरे, ऐसा आपको बताने का इसका प्रयत्न हमेशा चलता रहता है। मुझे दिखता नहीं क्या? यह रामगुरु पुरोहित भी इसमें शामिल हैं।"

यह सुनकर अनंगपाल बहुत खिन्न हुए। विमला से बोले—"क्यों व्यर्थ में अपने संशय से अपने मन को दुःख पहुँचाती है? उस बेचारी ने क्या किया? उसने एक भी शब्द तेरे विरुद्ध नहीं कहा। इन दोनों को देखकर इसे उसकी याद आ गई और इसने अपने उद्गार प्रकट किये। इससे तेरा क्या सम्बन्ध? व्यर्थ "

"हां हां!" विमला कर्कश स्वर में बोली—"मेरा बोलना व्यर्थ और उसका बोलना बहुत अच्छा। पिता जी! आपके मन में जो यह बात आई उसका कारण क्या?—यह क्या मेरी समझ में नहीं आता? मैं सब समझती हूँ। अगर आप इसी तरह इसका पक्षपात करेंगे, तो मैं यहां पैर तक नहीं रखूँगी। अगर मेरे आने से आपको दुःख होता है तो मैं आऊँ ही क्यों?"

रामगुरु इतनी देर तक चुप बैठे थे। अब वह बीच में ही बोले—"लड़की, अगर तू यहां न आयेगी तो महाराज के चार

दिन शांति से बीतेंगे इसमें कुछ शंका नहीं है। महाराज की आत्मा दुःख से तड़फड़ा रही है और शान्त करने के लिए तूने आकर उन्हें······"

पर अनंगपाल ने उन्हें अधिक न बोलने दिया। वे अपने दौहित्रों की ओर देखकर ऊँची आवाज़ में बोले—'बच्चो, तुम दोनों एक दूसरे से राम-लक्ष्मण जैसा व्यवहार करो। आपस में मत लड़ो। हमारे कुल के रामगुरु पुरोहित तुम्हें धनुर्विद्या सिखायेंगे। देखूँगा तुम दोनों में से कौन उनसे अच्छी प्रकार की विद्या सीखता है। एक महीने के पश्चात् मैं तुम दोनों की परीक्षा लूँगा और जो उत्तीर्ण होगा उसे गोद में बैठाऊँगा। चलो, झगड़ा मिटा न? तुम दोनों व्यर्थ में न लड़ो। गुरुजी, दोनों को अच्छे धनुष देना, इन्हें शब्दवेध अभी से सिखाइए। बड़े होने के बाद अच्छी तरह समझ में नहीं आवेगा।"

'नहीं—नहीं—नहीं, मेरे पुत्र को सिखाने के लिए रामगुरु नहीं। अगर परीक्षा ही लेनी है तो मैं अपने जयचन्द को किसी दूसरे से सिखाऊँगी। इनकी सहानुभूति तो कमला और उसके पुत्र की तरफ़ है। यह क्या मेरे जय को सिखाने वाले हैं। कभी मेरे जय की जान पर कोई संकट आ गया तो बस!"

"राम राम! चांडालिनी", रामगुरु एक दम क्रोधित होकर बोले—"क्या बोलती है? तेरी जीभ पर लगाम है या नहीं? तेरा दिल कैसा है? राजन्! इसका अन्तःकरण अन्तःकरण नहीं बल्कि कालकूट का घड़ा है। यह घड़ा क्या-क्या करेगा इसका

कुछ अन्दाजा नहीं है। अब मेरा निश्चय यही है कि·······"

"छिः, छिः, गुरुजी! आप इस मूर्ख लड़की के बड़बड़ाने पर क्यों ध्यान देते हैं? विश्वामित्र के पास जैसे राम-लक्ष्मण की जोड़ी तैयार हुई थी वैसी ही जोड़ी इनकी भी बनाइए। आप पागल छोकरी की बातें क्यों सुनते हैं?"

"राजा अनंगपाल, तू इस तरह प्रेम में पागल न हो। यह पृथ्वीराज राम की तरह अवश्य होगा। पर यह जयचन्द लक्ष्मण नहीं रावण के समान होगा। मुझ ब्राह्मण की वाणी झूठी नहीं हो सकती। यह तू अच्छी तरह जान ले। यह कैकेय देश का बीज सबका सत्यानाश कर देगा·····"

रामगुरु सोच रहे थे कि आगे बोलें या न बोलें कि विमला उस पर उबल पड़ी--

"मेरा पुत्र रावण होगा तो हर्ज नहीं, मगर लक्ष्मण बन कर इसके पुत्र का दासत्व कभी भी स्वीकार न करेगा।"

विमला से आगे न बोला गया। उसका शरीर कांप उठा। होंठ थरथराने लगे। उसने खिसक कर अपने पुत्र को पास खींच लिया। उससे बोली—"अरे! तुझे झगड़ा करने के लिए किसने कहा था? अगर उस गोद में नहीं बैठेगा तो क्या तेरे प्राण निकल जाएँगे? तुझे मेरी गोद नहीं है? भगवान् ने तुझे लड़की तो बनाया नहीं। जिसे गरज होगी वह लोगों का मन भरता फिरेगा, लोभ के वश होकर दूसरों का सत्यानाश करता फिरेगा। और जो कुछ भी मन में आयेगा किया करेगा। अपने को कुछ करने

की ज़रूरत नहीं। अगर तेरे शरीर में ताक़त होगी तो क्या जीत कर नहीं लेते बनेगा? पिताजी, अब मैं यहां नहीं रहती। आपके ही कहने से मैं यहां आई, अगर आप का ही मन मेरे लिए अच्छा नहीं तो मेरे रहने का मतलब क्या? मैं जाती हूँ। आप कमला को खुश रखें। वह आप की प्यारी स्त्री की है। मैं कैकेयी ही हूँ! इस लम्बी दाढ़ी वाले को क्या यही कहने को मिला।"

इतना कहकर उसने फिर अपने पुत्र को खींचा और मंथरा-संचार कैकेयी की भांति धीरे-धीरे पैर पटकती हुई चली गई।

राजा अनंगपाल, रामगुरु पुरोहित, कमला तथा दास-दासियां आश्चर्य-चकित हो सिर्फ ज़मीन की ओर देख रही थीं। कमला कष्ट के कारण रोने लगी। राजा ने कमला को छाती से लगा कर कहा—"बेटी! इस तरह रोती क्यों है? तुझे उसका स्वभाव मालूम नहीं क्या? चुप हो जा।" पर कमला को रोने से एक प्रकार की शान्ति का अनुभव हो रहा था। वह और भी जोर २ से रोने लगी। राजा ने उसे नाना प्रकार से समझाया तब वह जाकर कहीं चुप हुई। बोली—"पिता जी, क्या मैं इसी लिए आप से प्रेम करती हूं कि आप मेरे पृथ्वीराज को राज्य का मालिक बनावें, उसे गोद लें? वह क्यों मेरे ऊपर व्यंग्य के बाण कसती है?"

परन्तु राजा ने उसके इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर दिया, "जाने दे, तू क्यों उसके मुँह लगती है। वह ऐसी ही है।"

उपरोक्त घटना

हस्तिनापुर में दिल्लीपति अनंगपाल के राजमहल में घटी।

अनंगपाल बहुत वृद्ध हो गए थे। उनके बहुत वर्षों तक कोई सन्तान न हुई। इसीलिए उन्होंने तब की रीति के अनुसार दो और शादियां कीं। उनमें से एक कैकय देश और दूसरी कौसल देश की कन्या थी। उन दोनों स्त्रियों के दो राजकन्यायें पैदा हुईं। कैकय देश के राजा की पुत्री से विमला व कोसल देश के राजा की पुत्री से कमला। विमला की शादी क़न्नौज के राजा विजयपाल से हुई और उससे जयचन्द पैदा हुआ। कमला की शादी अजमेर के राजा सोमेश्वर से हुई और उनके पृथ्वीराज का जन्म हुआ।

अनंगपाल के उपरोक्त दो ही पुत्रियां न हुईं। कमला के बाद राजा के एक पुत्र भी हुआ, उसका नाम धनंजय रखा गया। जिस समय राजा के यह पुत्र हुआ उस समय हस्तिनापुर में महान् उत्सव हुआ। राजा ने तो उस उत्सव में बहुत द्रव्य खर्च किया ही, पर प्रजा ने भी कुछ उठा न रखा। किन्तु जब वह चार वर्ष का हुआ तो एकाएक कोठे पर से गिर कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। यहां वहां हाहाकार मच गया ! राजा-रानी को जो शोक हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी आशा का एक ही दीप था, उसे भी यमराज ने बुझा दिया, तो अब रहा ही क्या ? राजा को तो स्पष्ट अनुभव हुआ कि अब संसार में कुछ रहा ही नहीं ! उन्हें ऐसा लगा कि वे अपने वंश का बिना कोई आधार-स्तंभ छोड़े ही इस दुनियां से उठ जायेंगे। उसी दिन से राज्य में किसी को चैन न था। राजा को लोगों ने नाना प्रकार से समझाया। राजा की दोनों पुत्रियां भी आईं और वे

धीरे-धीरे दुःख भूल चले। राजा के दोनों नाती भी अपनी-अपनी माताओं के साथ आये थे। इन दौहित्रों की बाल-लीला से राजा को शान्ति मिली। कुछ दिनों तक तो यह सब ठीक रहा, परन्तु आगे राजा के दुःख में एक और भी कारण नज़र आया।

राजा की बड़ी लड़की विमला का स्वभाव बड़ा बुरा, सं ई थी तथा लोभी था। उसकी इच्छा थी कि उसका भाई तो मर ही गया; दूसरा भाई पैदा होगा, इसकी कोई उम्मीद नहीं है, इसलिए अपने पुत्र के ऊपर राजा की प्रेम-दृष्टि करा के उसे राज्य का स्वामी बनाया जाय। इसीलिये वह अपने पुत्र को राजा के सामने किये रहती थी। परन्तु कुछ कारणों से उसको इस बात का ज्ञान हुआ कि राजा का प्रेम उसके पुत्र की अपेक्षा कमला के पुत्र की ओर अधिक है। जब से उसके मन में यह संशय उत्पन्न हुआ, तब से उसकी दशा विचित्र थी। वह लोगों से चिढ़ने और उनका तिरस्कार करने लगी। जिनके प्रति वह तिरस्कार प्रदर्शित करती वे उससे चिढ़कर कमला को अधिक चाहने लगते। यह सब देखकर विमला का खून खौल उठता।

कमला बेचारी बहुत सीधी तथा सरल स्वभाव की थी। उसके मन में इन सब बुरी भावनाओं के लिए स्थान न था। वह जयचन्द तथा अपने पुत्र में किसी प्रकार का अन्तर न समझती थी। विमला के प्रति उसे हृदय में बहुत सम्मान था; क्योंकि विमला उसकी बड़ी बहिन थी। कमला को कहीं भी जाना या

कुछ भी करना होता तो वह बिना विमला की आज्ञा के न करती; परन्तु विमला की दृष्टि एक दम कलुषित थी—उसे कमला का व्यवहार ढोंगीपने का मालूम होता। वह समझती कमला अपने पुत्र को राज्य दिलाने की घात में है, राजा के मन में मेरे विरुद्ध विचार भर कर अपना काम साधना चाहती है। ऐसे भयंकर सन्देह ने उसके मनमें संशय जमा लिया। हर बात का वह उल्टा ही अर्थ लगाती थी। कोई अगर उससे किसी बारे में 'क्यों, कैसे' पूछ लेता तो वह तुरन्त समझती थी कि ऐसा प्रश्न करने का कोई बुरा अभिप्राय है। ऐसी ही स्थिति के कारण इस परिच्छेद के पूर्व भाग में वर्णित एक भयंकर वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ।

विमला बड़ी क्रुद्ध हुई। उसने शपथ ली कि आज इस घर में न तो पानी की एक बूँद पीयेगी, और न ही अन्न-ग्रहण करेगी। उसने अपने साथ लाए हुए सामान को एकत्रित करने की आज्ञा दी—"इसी दम यहाँ से निकल कर मुझे वापस अपने घर जाना है। एक क्षण का भी विलम्ब नहीं होना चाहिये। अब यहाँ का जल भी मेरे लिये हराम है।" उसके आदमियों ने तैयारी शुरू कर दी। राजा अनंगपाल को यह बात मालूम हुई। उन्हें यह अच्छा न लगा कि अपनी लड़की इस तरह से रूठ कर जाय। राजी-खुशी जाती तो कोई हर्ज न था, पर यह जा रही थी क्रोधित होकर और भयंकर शपथें लेकर। अतः राजा उसके कमरे में गये और बोले—"विमला, तू ज़रा-सी बात पर कितनी क्रोधित हो गई, आखिर तू मेरी ही लड़की है न। मेरा तुझ पर जो प्रेम

है उसके लिये ही मैंने तुझे बुलाया था, अब तू इस तरह मत रूठ। तुझे जाना हो तो जा। तू अपने घर जायेगी इस बात का दुःख मुझे नहीं है। पर इस तरह से क्रोध करके और गाली देकर मत जा। मन शांत होने दे। मन का गुबार निकाल दे। मैं तुझे अच्छी तरह ठाट-बाट से भेजूँगा।"

वयोवृद्ध राजा अपनी लड़की से इतनी दीन वाणी में बोल रहे थे कि उन्हें ऐसा करते देख कर किसी का भी हृदय गद्गद् हो गया होता। परन्तु विमला को ऐसा कुछ न लगा, उल्टे वह बोली—"पिता जी, आप अब क्यों व्यर्थ ऐसा बोलते हैं ? तुम्हारा सब मन तो उस कमला पर और उसके बेटे पर लगा है। पाँव के नीचे कुचली जाने वाली मिट्टी के बराबर भी मेरा मान यहाँ नहीं है, फिर मैं क्यों रहूँ। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि यहाँ का पानी भी न पीऊँगी। अगर आप चाहते हैं कि मैं सच-मुच यहां रहूँ तो कमला और उसके बेटे को भिजवा दीजिये। अब वह और मैं एक क्षण भी एक घर में नहीं रह सकते। दो में से एक ही रहेगा। मैं यहाँ रहूँ क्यों? या तो उसे भिजवा दीजिये, नहीं तो उसे रहने दीजिये, मुझे जाने दीजिये। अब और क्या कहूँ?"

राजा को उसकी यह बात बहुत बुरी लगी। एक क्षण तो उन्हों ने विचार किया कि उसे जाने ही दें, पर प्रेम में कुछ नहीं सूझता, प्रेम पागल होता है। उन्होंने फिर सोचा कि उसे इस तरह नहीं जाने देंगे, अतः बोले, "क्या बोलती है? उसे भिजवा दूँ?

तू जाती है तो तुझे तो मैं जाने नहीं देना चाहता और वह रहना चाहती है तो उसे भेज दूँ !"

"क्या यह आपके लिये रह रही है ?" विमला झट काटकर बोली—"पिताजी, वह तुम्हारे लिये नहीं, तुम्हारी मृत्यु के लिये रह रही है। अगर तुम्हारी मृत्यु जल्दी नहीं होगी तो यह उसे जल्दी लायेगी। उसे लाने के लिये ही यह रह रही है। उसे आप नहीं, आपका राज्य अपने बेटे के लिये चाहिये।"

यह सुनते ही राजा को बड़ा क्रोध आया। क्रोध के मारे उनके हाथ-पैर कांपने लगे। मुँह से शब्द निकलते ही न थे, तथापि रोष से बोले—"दुष्ट, नीच, मेरे सामने से चली जा, क्यों उस भोली लड़की की निन्दा करती है ? उसका मन तेरे समान नहीं है। इसके बाद अपना मुँह मुझे न दिखाना, काला कर ले इसे।"

विमला दब गई। आगे कुछ न बोली, पर कमला के प्रति उसका द्वेष और भी बढ़ गया और वह वहाँ से चली गई।

—दूसरा परिच्छेद—

लड़कपन के साथी

जैसे सुन्दर सुहावने दिन एकाएक मेघ गर्जन होने लगे, बिजली कड़कने लगे और कृष्ण वर्ण बादलों के छा जाने से चारों ओर अँधेरा ही अंधेरा हो जाय—और इन सब के कारण सुदिन भी दुर्दिन हो जाय, ऐसी ही स्थिति उस रोज़ अनंगपाल

के राजमहल में हुई। विमला आई, चार दिन चुप बैठी रही। भाई की मृत्यु से दुःखित बाप को सांत्वना देने आई हुई लड़की बाप का शोक और ही बढ़ा गई। धनंजय के मरने पर उसके दिल में यह विचार पैदा हुआ कि पिता की गद्दी अब मेरे बेटे को मिले। पर प्रथम ग्रास में ही मक्षिकापात हुआ। उसके मन में यह बात बैठ गई कि पिताका चित्त ठिकाने नहीं है—उनका ध्यान कमला और उसके बेटे पर है। शायद उसे इस बात का प्रमाण भी मिला। उसका कारण भी स्वयं वही थी।

विमला स्वभाव से लोभी और क्रोधी थी। कमला निर्लोभ और उदार मनकी थी। कमला का कमल-सा विकसित चेहरा प्रत्येक के मन में आनन्द उत्पन्न कर देता था और विमला का क्रोध और ईर्ष्या से लाल हुआ चेहरा प्रत्येक के मन में उसके प्रति तिरस्कार पैदा कर देता था।

जो स्थिति माताओं की थी वही थी बच्चों की। जयचंद गुमसुम और क्रोधी था। पृथ्वीराज हँसमुख और बोलने वाला। उसका बोलना सुनकर प्रत्येक को उसे गोदी में लेने की इच्छा होती। पृथ्वीराज को देखकर प्रत्येक को कौतुक होता था। उसे ही लोग भावी दिल्लीश्वर कहते। यह बात कुछ लोगों ने खुले तौर पर कह दी और वह विमला के कानों तक पहुँची। उसका द्वेष और लालच बढ़ता गया। उसका यह हाल देखकर लोग पृथ्वीराज को और भी प्रेम करते और जान बूझकर-कमला की स्तुति। ऐसी बातें सुनकर विमला के दिमाग़ का पारा गर्म हो उठा और उसका क्या परिमाण

हुआ, यह हम पिछले परिच्छेद में कह आये हैं।

विमला का उस प्रकार चले जाना राजा अनंगपाल को पितृ-प्रेम के कारण बड़ा बुरा लगा। 'पर कमला जैसी सुशील, प्यारी, गुनवती लड़की को विमला मेरे हृदय से निकालना चाहती थी' ऐसा सोचकर उनके मन में उसके प्रति तिरस्कार भी आया। उन्होंने निश्चय किया कि अब उस दुष्ट लड़की का मुँह भी न देखूंगा। उन्होंने सोचा, चलो अच्छा ही हुआ वह स्वयं ही चली गई।

कमला विमला के इस तरह चले जाने से बहुत दुःखित हुई। उसने सोचा कि जिस कारण से हम पिता के घर आये वह तो पूरा न हुआ, उलटा उनका शोक और बढ़ गया। इन सब का कारण मैं और मेरा पुत्र ही हैं, इसीलिये पिता को इतना कष्ट हुआ; अब मुझे भी यहां न रहना चाहिये। यह विचार आते ही वह पिता के पास गई। पिता की ओर देखते ही वह रोने लगी—"पिता जी, इस वृद्धावस्था में मेरे कारण आपको दुःख हो रहा है, मैं यह कैसे देखूँ? अगर मेरे जाने से विमला बहन को संतोष हो जाय और वह आने को तैयार हो तो मुझे जाने दीजिये। मैं खुशी-खुशी जाऊँगी; पर आप इस अवस्था में कोई खेद न करें।"

कमला की बात सुनकर अनंगपाल बोल उठे—"कमला, तू भी ऐसे समय में मेरे पास से चली जाने की बात कहती है; तुझे क्या कहूँ? अब मैं विमला का मुँह भी न देखूँगा। तेरे जैसी सुशील लड़की को उसने बुरा-भला कहा, इससे मेरा मन उससे फिर गया है। अब तू भी मुझे छोड़ कर जाना चाहती है तो मेरी

क्या हालत होगी ? तुझे और पृथ्वीराज को देख कर ही तो मैं जी रहा हूँ। तेरे पति नाराज़ न होंगे, इसका मुझे विश्वास है, समझी। अब तू कुछ दिन रह, फिर जाना। पृथ्वीराज को तू मेरे ही पास रहने देना—उसे मैं क्षत्रियों की सब विद्याओं में निपुण बना दूँगा। बेटी, अपने गुरु धनुर्विद्या में द्रोणाचार्य से हैं, उनकी बराबरी करने वाला भारतवर्ष में कोई नहीं है। अगर तू चली भी गई तो पृथ्वीराज को यहीं छोड़ जाना, वही अब मेरा सहारा है।"

कुछ देर तक कमला चुप रही, फिर बोली—"पिताजी, आप ठीक कहते हैं। अगर आपने उसे अपने पास रखा तो विमला बहन की कही हुई बात सच प्रमाणित होगी। पिता जी, मुझे उसके आरोप का डर लगता है। उसके मन में यह था कि अगर मैं यहां न होती तो सब ठीक हुआ होता, उसके मन की सब बातें पूरी हुई होतीं।"

"जाने दे, उसका नाम भी न ले। वह मुझे······।"

"पिताजी, ऐसा न कहिये। कुछ भी हो, वह आप की लड़की है। मेरी बहिन है, तब उसे······?"

"अच्छा चुप रह। तू उसका नाम भी मत ले। आज मैं सोमेश्वर महाराज के पास दूत भेज कर उनसे विनती करूँगा कि वे तुम्हें यहां कुछ रोज़ और रहने दें। पृथ्वीराज को धनुर्विद्या सिखाने की यहां सुभीता है, उसे यहीं रहने दो। वे इन्कार नहीं करेंगे। जा तू ज़रा भी खेद न कर। पृथ्वीराज को धनुर्विद्या

सिखा कर, वीर बना कर उसे ही सारा राज्य-पाट सौंप कर मैं तपस्या के लिये वन चला जाऊँगा, इसलिये मैं उसे अपने मन के अनुसार ही बनाना चाहता हूँ। वह ऐसा ही होगा, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। जा, अब जा, ज़रा भी खेद न कर। शायद बाद में यह भी कहने का मौक़ा न मिले कि जो कुछ परमेश्वर की कृपा से हुआ, अच्छा ही हुआ। जा न!"

इस तरह से कमला को समझा बुझा कर महाराज ने रख लिया। पर उसका पूरा समाधान न हुआ। पिता के सामने प्रश्न भी कैसे करे? जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ—यह विचार स्वप्न में भी उसके मन में नहीं आया। जो कुछ हुआ वह बड़ा अनिष्ट-कारक है, ऐसा उसका विश्वास था। शायद इस घटना से अजमेर और कन्नौज के राजाओं में वैमनस्य बढ़ जाये और दोनों एक दूसरे को उखाड़ फेंकने पर उतारू हो जावें। पता नहीं क्या होगा? ऐसे अनेक प्रकार के विचार उसके मन में आकर उसे दुःखी करते रहे।

राजा अनंगपाल ने सचमुच ही पृथ्वीराज के शिक्षण का सब भार अपने कुलगुरु पर डाल दिया और उनसे बड़े आग्रह-पूर्वक विनती की कि इस लड़के को अगर आप अपनी तरह धनुर्विद्या में निपुण न कर सकें तो कम से कम क्षत्रिय-कुमारोपयोगी धनुर्विद्या का ज्ञान अवश्य करा दें। राजगुरु रामगुरु का ध्यान पहले ही से उस बालक पर था। राजा का यह विचार सुनकर कि वे ही अस्त्र शस्त्र की शिक्षा दें, उन्हें बड़ा आनन्द हुआ।

और वे राजा से बोले—"राजन्, यह काम तुम मेरे सुपुर्द करते हो तो मैं उसे बड़े आनन्द से करूँगा। इस बालक की हथेली पर चक्रवर्ती सम्राट् के लक्षण हैं, यह मैंने देखा है। ऐसे को क्षत्रियों की श्रेष्ठतम विद्या मिलनी चाहिए। मैं इसे अपने घर ले जाऊँगा, मेरे पास चार और बालक भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के हैं जो अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण होना चाहते हैं। इसे भी सोचना चाहिये कि मैं एक पाँचवां बालक हूँ। इसे अपने राजपुत्र होने की बुद्धि छोड़नी होगी। गुरु के घर पर सब सामान हैं। ऊंच नीच का विचार वहां नहीं होता है। मैं यह विचार उसके मन में बैठा दूंगा, पर पहले आप से ही निवेदन कर देता हूँ। आज अच्छा महूर्त है; मेरे घर भेज दीजिये। कल को शुभ बेला में ही मैं विद्याग्रहन कराऊँगा। वह अर्जुन सा वीर बनेगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। महाराज, स्वयं अपने बारे में बढ़कर बातें नहीं करनी चाहिये, पर मैं वही कह रहा हूं जो सत्य है।"

रामगुरु पुरोहित के कथनानुसार प्रत्येक वस्तु की व्यवस्था करने का राजा ने आश्वासन दिया। यह सुन कर राजगुरु बड़े आनन्दित हुए। इधर यह समाचार सुनकर महाराज सोमेश्वर को भी बड़ा आनन्द हुआ, क्योंकि वे जानते थे कि सभी विद्याओं में निपुण बनाने वाले अगर कोई हैं तो वे हैं महराज अनंगपाल के राज-पुरोहित। यह उनका ही नहीं, सभी क्षत्रिय राजाओं का विश्वास था और इसीलिये राजगुरु से विद्याध्ययन करने के लिये दूर-दूर से क्षत्रिय-कुमार वहां आया करते थे।

पृथ्वीराज उम्र में इतना छोटा था, फिर भी गुरु के घर वह उत्सुकता और खुशी से गया। वहां एक भाट गृहस्थ का लड़का भी छात्र-विद्या सीखने के लिए गुरु के पास आया था। यह लड़का बड़ा चतुर, मृदुभाषी, सद्गुणी और गुणग्राहक था। वह पृथ्वीराज से तीन साल बड़ा था, फिर भी पृथ्वीराज के गुरु-गृह आने पर उसे बड़ा आनन्द हुआ। वह उसे प्यार करने लगा, और पृथ्वीराज भी खूब हिल-मिल गया। उसका नाम चंद्र था। गुरु जी का प्रेम चंद्र पर बहुत था, क्योंकि चंद्र गुरु जी का आज्ञाकारी था। गुरु के बताये हुए श्लोक को भूलने पर भी वह स्वयं पद्यरचना करके नया श्लोक बना लेता था। एक दो बार तो गुरुजी इस भ्रम में पड़ गये कि वे भूल रहे हैं या बालक भूल रहा है। बार बार पूछते थे कि मैंने तो तुझे अमुक पाठ पढ़ाया था, यह दूसरा पाठ तू कहां से ले आया? इस पर चन्द्र कहता, मुझे जैसा आया वैसा मैंने कह दिया। उसने फिर काव्य की कई पंक्तियां सुनाईं। गुरु के पूछने पर उसने कहा कि ये पंक्तियां एक नये काव्य की हैं। ऐसा दो एक बार होने पर गुरुजी जान गये कि यह बालक अलौलिक बुद्धिवाला है। तभी से उनका प्रेम चन्द्र पर हो गया। चन्द्र का मन किसी दूसरी विद्या में नहीं लगता था, वह हमेशा कविता किया करता या धनुर्विद्या का ज्ञानार्जन। उसके साथ-साथ रहने से पृथ्वीराज को भी इन दोनों विद्याओं से प्रेम हो गया। पृथ्वीराज स्वयं कविता नहीं करता था, एक बार चन्द्र जो पढ़कर सुनाता उसी की नक़ल करता, दुहराता। इस तरह से सात-आठ वर्ष के बाल-

कवि चन्द्र और पांच वर्ष के बालवीर पृथ्वीराज में मित्रता हो गई। किसी वस्तु और छाया का जिस प्रकार अभेद्य सम्बन्ध होता है वैसा ही चन्द्रकवि और पृथ्वीराज का भी हुआ। कहीं भी जाँय, कुछ भी करें, दोनों साथ ही रहते थे। जो भी शाबासी या अपयश मिलना होता दोनों को ही मिलता, चाहे वह पुरस्कार हो या दंड।

इस तरह से दोनों दो शरीर एक प्राण हो गये। जब-जब राजा अनंगपाल पृथ्वीराज को बुलाते वह अकेला कभी न जाता; वह चन्द्र को लेकर ही जाता। अतः चन्द्र भी हृदय से पृथ्वीराज को चाहता।

एक दिन एक अद्भुत् घटना घटित हुई। इस दिन गुरुजी के घर में यज्ञ-हवन था, उन्हें एक प्रकार के पत्तों की जरूरत थी। चन्द्र और पृथ्वीराज लाने के लिये उठ खड़े हुये। पृथ्वीराज को भेजने की गुरुजी की इच्छा न थी, क्योंकि वह छोटा था, पर पृथ्वीराज ने एक न सुनी। तब गुरुजीने–'जा, सम्हल कर जाना' कह कर उसे भी जाने दिया।

दोनों लड़के बड़ी उत्सुकता से पगडंडी पकड़ कर जङ्गल में चले। दोनों उस वृक्ष के पास पहुंचे जिसके पत्ते चाहिये थे। चंद्र ने तुरन्त पृथ्वीराज से कहा—"कुमार, तुम पेड़ के नीचे खड़े होकर पत्ते इकट्ठे करो, मैं पेड़ पर से गिराता जाता हूँ। जल्दी काम होता जायगा।" पर बालक पृथ्वीराज इसके लिए तैय्यार न हुआ। बोला—"मैं तुम्हारे साथ पेड़ पर चढ़ कर

पत्ते गिराऊँगा और फिर हम दोनों उतर कर जल्दी-जल्दी इकट्ठे कर लेंगे।" अंत में बड़े वाद-विवाद के पश्चात् चंद्र ने उसे भी चढ़ाना क़बूल किया। पहले उसने पृथ्वीराज को सहारा देकर चढ़ाया, फिर स्वयं चढ़ा, फिर उसे आगे सरकाया, फिर स्वयं आगे सरका। पर दोनों ही छोटे थे, ऐसा कब तक चलता! पृथ्वीराज ने उचक कर एक डाल पकड़ ली और उस पर जा बैठा। इतने में पता नहीं क्या हुआ कि चन्द्र का पैर सरक गया और वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। उसके मस्तक पर इतनी चोट लगी कि वह बेहोश हो गया।

इधर चंद्र का यह हाल देखकर पृथ्वीराज घबरा गया। पहले तो उसने सोचा कि मैं कूद पड़ूं पर जमीन से छः सात हाथ की ऊँचाई पर गया हुआ वह कैसे कूदता? उसकी हिम्मत नहीं हुई।

इधर जब गुरुजी ने देखा कि चार पत्ते लाने के लिये गये हुए बालक अभी तक नहीं लौटे तो वे स्वयं उनकी खोज में चले। इधर चंद्र के मस्तक से खून निकलता देखकर एक कौवा उसके क़रीब आया। पृथ्वीराज ने देखा कि यह कौवा मेरे मित्र का खून चख कर शायद मस्तक में और भी घाव कर देगा तो वह बिना आगा-पीछा सोचे कौवे को भगाने के लिये कूद पड़ा।

उसका कूदना गुरुजी ने देखा। सब कारण समझ कर यह दौड़े। दैवयोग से पृथ्वीराज के जमीन पर गिरने के पहले ही गुरुजी ने उसे अपने हाथों पर रोक लिया। पृथ्वीराज को चोट नहीं आई।

गुरुजी ने तुरन्त उसको खड़ा करके चन्द्र के मुँह में किसी वनस्पति का रस निचोड़ दिया। तुरंत ही चन्द्र हड़बड़ा कर उठा और इधर-उधर देखने लगा। गुरुजी ने दूसरी एक वनस्पति की पत्ती घाव पर लगाई और घाव का बहना बन्द हो गया। दोनों को लेकर गुरुजी आश्रम आये। वहां चन्द्र ने सब हाल सुनाया और पृथ्वीराज ने भी अपने इतने ऊँचे से कूदने का कारण बताया। गुरुजी ने उसका कूदना देखा ही था। चन्द्र को यह जान कर पृथ्वीराज के प्रति और भी प्रेम हो गया कि मेरे लिये यह इतनी ऊँचाई से कूद पड़ा। उस दिन से दोनों का प्रेम-सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गया।

ऊपर कथनानुसार सभी लड़कों को गुरुजी के आश्रम में उत्तम शिक्षा दी जा रही थी।

× × × ×

इधर विमला क्रोधित होकर पितृगृह छोड़कर अपने घर पहुंची। पिता ने एक तो मुझे आग्रह-पूर्वक रोका नहीं, दूसरे मुझे चांडालिनी आदि कह कर मेरा मुँह भी न देखने की शपथ खाई—यह सोच-सोच कर वह बड़ी कुपित होती रही। इसका कारण कमला है। उसके मन में दृढ़ विश्वास हो गया कि कमला ने ही कुटिलता से पिता का प्रेम पा लिया और मेरी ओर से उनका मन फेर दिया। अब मुझे उससे बदला लेना चाहिये। वह बदला लेकर कमला को नीचा दिखाने का उपाय सोचने लगी। रास्ते में अपने लड़के को फटकार कर उसने कहा—"मुये, तू बड़ा होता

तो तुझे सोमेश्वर पर चढ़ाई करके अपनी मौसी को पकड़ कर लाने को कहती और उसे अपनी दासी बनाती। पर तू तो इतना छोटा है, तुझसे क्या शपथ लूं और क्या कहूँ ?"

बेचारा जयचंद मां की यह वाणी सुनकर घबरा गया और चुपचाप उसकी ओर देखता रह गया। उसे इस तरह ताकता देख-कर विमला रोष में बोलीं—"पागलों की तरह देखता क्या है ? समझा तूने मैंने क्या कहा ? तेरी मौसी और उसके पति को बन्दी बना कर लाना चाहिये। उसका बेटा तेरा द्वारपाल बनेगा। है क्या इतनी हिम्मत ?" यह प्रश्न सोचते-सोचते उसे अपने आप हँसी आई और वह पागल की तरह खिलखिलाने लगी। शायद उसे स्वप्न सा दिखाई पड़ा कि बहन और बहनोई बन्दी बना लिये गये हैं और पृथ्वीराज जयचन्द का द्वारपाल हो गया है।

परन्तु वह हँसी देर तक न टिक सकी। ऐसी घड़ी किस समय आयेगी, ऐसा सोच कर वह निराश हो गई। परन्तु उसका लड़का, जो उस समय पागल-सा दिखाई दिया था, आगे चल कर पागल सिद्ध नहीं हुआ। अपनी मां के वचनों का उस पर पूरा असर पड़ा जैसा कि आगे के परिच्छेदों में दिखाई पड़ेगा।

—तीसरा परिच्छेद—

एक निधि

चन्द्र और पृथ्वीराज का स्नेह बढ़ता जाता था और दोनों का विद्याभ्यास भी समान रूप से चल रहा था। सोमेश्वर का पुत्र और

अनंगपाल का भानजा पृथ्वीराज रामगुरु से विद्याभ्यास कर रहा है, यह खबर चारों ओर फैल गई और कितने ही राजपुरुषों ने रामगुरु से अपने पुत्रों को विद्याभ्यास कराने का निश्चय किया। क़रीब-क़रीब पन्द्रह सोलह राजपुरुषों ने अपने-अपने पुत्र भेजे। जगह न होने के कारण रामगुरु ने अब और विद्यार्थी न लेने का विचार किया। इन सब पन्द्रह-सोलह विद्यार्थियों को रामगुरु समान रूप से विद्याभ्यास करवाते थे। राजपुत्र होने से एक पर अधिक ध्यान, मंत्री-पुत्र होने पर उससे कम और भाट पुत्र होने से उस पर ध्यान न देना—यह रामगुरु का आदर्श न था। उनके लिये सब समान थे। वह विद्यार्थियों को बड़े प्रेम से पढ़ाते थे। फल यह हुआ कि सब का विद्या-प्रेम बढ़ने लगा। पृथ्वीराज अपने राजपुत्र होने का ज़रा भी अभिमान न कर गुरु की अधिक से अधिक सेवा करता था। सबके साथ बैठता, सबके साथ उठता। केवल चंद्र पर उसका प्रेम औरों से ज़्यादा था। उस प्रेम का विशेष कारण क्या हुआ, इसका वर्णन हम पिछले परिच्छेद में कर चुके हैं।

उनके विद्याभ्यास के बीच में कई मज़ेदार घटनायें घटीं। उनमें से दो एक का वर्णन करना आवश्यक है।

रामगुरु एक रोज़ बता रहे थे कि वाण छोड़ने के लिये निशाना कैसे साधना चाहिये। चित्त और नेत्रों का वाण छोड़ने से क्या सम्बन्ध है? उनकी भी एकाग्रता की कितनी ज़रूरत है? अगर वह वस्तु जिस पर वाण छोड़ना है, चल रही हो तो तीर कैसे

छोड़ना ! इस पर चंद्र ने सहज में ही पूछा—"गुरुजी, जो वस्तु चल या अचल है, उस पर बाण छोड़ना तो आपने सिखाया पर ऐसी चीज़ पर बाण कैसे छोड़ा जाय जो आंखों की ओट में हो।"

यह प्रश्न कल्पित था, उसके प्रश्न निराले ही हुआ करते थे; पर विचित्रता ही उनका गुण न था, उनमें दूसरे गुण भी हुआ करते थे। गरुजी उसकी अवहेलना नहीं करते थे। उसका कुछ अंश हमेशा विचारणीय हुआ करता था। अतः वे तुरन्त ही उसके प्रश्नों का उचित समाधान कर दिया करते थे।

आज का यह प्रश्न सुनकर गुरुजी को थोड़ा सा संताप हुआ। मैं जो शिक्षा दे रहा हूँ उस पर ध्यान न देकर यह व्यर्थ ही बीच में प्रश्न करता है। पर क्रोध करना गुरु के लिये उचित न जान वह बोले—"चंद्र, तेरे प्रश्न का विचार फिर करूँगा। प्रथम मैं जो कह रहा हूँ, उस पर कुछ पूछना हो तो पूछ और उस पर मेरा समाधान सुन और आज का पाठ जब मैं पूरा कर लूँ तो दूसरा प्रश्न पूछ।"

गुरु जी की बात सुनकर चन्द्र चुप हो गया। अब आज के पाठ के प्रयोग की बारी आई। सब का प्रयोग हो गया, पश्चात् गुरु चंद्र से बोले--"चंद्र, तेरा जो प्रश्न है वह अब पूछ।" चन्द्र ने अपना प्रश्न दुहरा दिया। गुरु जी बोले, अरे जो न दिखाई पड़ता है और न ही सुनाई देता है उसका लक्ष्य कैसा ? तेरे प्रश्न का अर्थ मेरे ख़्याल में नहीं आ रहा है। फिर से तो बोल।

चन्द्र तुरन्त बोला "गुरुजी, भीष्म की कथा कहते हुये आपने बताया था कि भीष्म ने कौरवों और पांडवों से कहा कि मुझे गङ्गा-जल पिलावो। कौरवों में से कितने ही दौड़कर गङ्गा जल ले आये; कोई बर्तन में ही बहुत सा गङ्गाजल लाया। परन्तु भीष्म को वह गङ्गा जल नहीं चाहिए था। उन्हें ऐसा गङ्गाजल चाहिये था जो वहीं उसी समय प्रवाहित होकर उनके मुँह में जा पड़े। उनकी यह इच्छा सुनकर अर्जुन ने ज़मीन पर वाण मारकर गङ्गा को प्रवाहित किया और भीष्माचार्य के मुँह में गंगा-जल गया। यह गंगा न तो दिखाई देती थी और न उसके प्रवाह का शब्द ही सुन पड़ता था। फिर भी अर्जुन ने वाण मारकर गंगा को प्रवाहित कैसे किया?"

चन्द्र की बात सुनकर गुरुजी चकित हो गये। वह ऐसा प्रश्न पूछेगा, ऐसी उनको स्वप्न में भी आशा न थी। उन्हें सुनकर कौतुक हुआ और हँसकर बोले, "चन्द्र, यह तेरा दिमाग़ ही विलक्षण है। तूने जो प्रश्न अभी पूछा, उसका शब्दों में जवाब देने की अपेक्षा कर के दिखाना ही उचित है। चलो आज तुम्हें चमत्कार दिखाता हूँ।"

ऐसा कहकर उन्होंने अपना धनुषवाण उठाया। बच्चों को भी धनुष वाण लेने को कहा। अब सब जंगल की ओर चले। उधर बड़ी देर तक आस पास देखने के पश्चात् रामगुरु अपने शिष्यों से बोले, "सावधान होकर देखो, मैं क्या-क्या करता हूँ?" ऐसा कहकर उन्होंने ज़मीन पर एक तीर मारा। वह ज़मीन में घुस गया और अन्दर से तांबे के बर्तन-जैसी खनकने वाली आवाज़ सुनाई दी। यह आवाज़ सुनकर रामगुरु और उनके शिष्य दोनों को

आश्चर्य हुआ। उनकी आशा थी कि ज़मीन के अन्दर से पानी का सोता फूट निकलेगा। आवाज़ होने के काफ़ी देर बाद तक सब राह देखते रहे, पर पानी का फौव्वारा ऊपर न आया। रामगुरु का चेहरा थोड़ा निराश हो गया, पर किसी से कुछ न बोलकर उन्होंने दूसरा बाण निकाला। बाण चढ़ाकर पृथ्वी पर ध्यान से देखकर उन्होंने पुनः कमान खींची। पूर्व जगह से एक हाथ की दूरी पर बाण मारा। वह पृथ्वी में बड़ी तेज़ी से घुसा, पर पहले की सी ही आवाज़ फिर आई। रामगुरु निश्चित रूप से जान गये कि बाण पृथ्वी के अन्दर किसी धातु के भँडार पर लगा है। तुरन्त ही उन्होंने पृथ्वी खोदने के लिये औज़ार मंगवाये। उन्होंने सब विद्यार्थियों से कहा—"लड़को, यहां कोई विलक्षण बात है। मुझे लगता है कि ज़मीन के अन्दर किसी गड़े खज़ाने पर मेरा बाण लगा है। क्या है? अभी देख पड़ेगा। कोई ख़ज़ाना होगा तो राजा का और हमारा भला होगा।"

गुरु की आज्ञा मिलते ही छात्रों ने पृथ्वी को खोदना शुरू कर दिया। बात की बात में कमर जितना गढ़ा हो गया। खोदते-खोदते वे तीर तक पहुँचे, जिसके नीचे तांबे की भारी चादर थी। यह चादर बड़ी लम्बी-चौड़ी थी। गुरु को पूर्ण विश्वास हो गया कि इसके अन्दर कोई ख़ज़ाना है। अब गुरु ने शास्त्रों में वर्णित उपायों से देवताओं की स्तुति की और उस जगह पहरा बैठाकर वापस चले आये। सब की बड़ी इच्छा थी कि उसे और खोदकर और उस पर से धातु की चादर हटा कर देखा जाय कि क्या है, पर

गुरु के कुछ न करने पर सब निराश हो गए।

इधर दूसरे दिन गुरुजी ने ब्राह्मणों को बुला कर विधिवत् उस स्थान के देवता की पूजा की। अब खुदाई फिर प्रारंभ हो गई। खोदते-खोदते उस चादर के दोनों छोर भी मिले। वह चादर इतनी जम गई थी कि उसका उखाड़ना गुरुजी और उनके शिष्यों की ताक़त से बाहर था। बिना थोड़े लोगों की सहायता के उसे उखाड़ा नहीं जा सकता था, पर छात्रगण बड़े उत्साही थे। उन्हें इसमें अपना अपमान जान पड़ा। उन्होंने गुरुजी से कहा कि आप हमारी ताक़त में शंका न कीजिये, हम अभी उखाड़ देते हैं। गुरुजी ने सोचा कि धातु का पत्रा किसी के हाथ में लग जायगा या इस चादर के नीचे शायद कोई गड्ढा हो और कोई उसी में न गिर पड़े। पर छात्र डटे रहे और उसे उखाड़कर ही उन्होंने दम लिया। उसको हिलाते ही इतने ज़ोर की आवाज़ हुई और पृथ्वी हिली कि सारे जंगल के पशु-पक्षी घबरा गये। लड़कों को अपनी ताक़त पर बड़ा हर्ष हुआ और वे ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे।

हर्ष कम होने पर मंडली ने देखा कि अन्दर गड्ढा है और उसमें से ही नीचे जाने को सीढ़ियां बनी हैं। अब वे नीचे उतरने लगे, पर आगे अँधेरा था। गुरुजी ने उन्हें आगे जाने से रोका। वे रुक गये। अब मशाल जलाने की व्यवस्था करके वे पुनः नीचे उतरे। उतरते-उतरते वे एक कमरे में पहुँचे जहां ठँडी और ताज़ी हवा चल रही थी। चारों ओर सफ़ाई थी, पर हवा कहां से

आ रही थी, बिल्कुल पता न चला। रामगुरु ने भी जान लिया कि हवा आने की व्यवस्था इस कमरे में की गई है, पर उजाला क्यों नहीं दिखाई पड़ रहा है। अब वे बारीकी से निरीक्षण करने लगे। दालान में आगे जाते-जाते उन्हें लोहे का एक सन्दूक दिखाई दिया। सन्दूक बहुत बड़ा था। सन्दूक दस पन्द्रह हाथ लम्बा और चार हाथ ऊँचा था। सन्दूक के ढकने के दो तरफ़ सिंह की मूर्ति थी और बीच में एक नारी-मूर्ति, जिसे देखकर सोलह-सत्रह वर्ष की लड़की होने का भ्रम होता था। वह पुतली इतनी सुन्दर और वास्तविकवत् थी कि पहले-पहल तो गुरुजी और शिष्यों ने समझा कि स्वर्ग-लोक से कोई परी ही वहां आ गई है। उसने अपने हाथ इस तरह से कर रखे थे मानों कह रही हो सन्दूक को हाथ न लगाओ।

मंडली यह देख स्तब्ध होकर खड़ी रह गई। पर जब बड़ी देर तक वह देवी हिली ही नहीं, तब उन्होंने सोचा कि यह तो तांबे की मूर्ति होगी। सन्दूक पर परी के पैरों के पास कविता लिखी हुई थी।

—चौथा परिच्छेद—

विरूपाक्ष पंडित

यह देखकर बालकों और गुरुजी को महान् आश्चर्य हुआ कि इस पुतली-द्वारा रक्षित बड़ा खज़ाना सचमुच सन्दूक के

अन्दर है, ऐसा सबका विश्वास हो गया; पर उसे कैसे अपने हाथ में किया जाय, इसकी चिन्ता सब को हुई। वह पुतली संदूक पर इस तरह खड़ी थी और उसके अगल-बगल दोनों शेर ऐसे खड़े थे कि मालूम होता था जो भी सन्दूक को हाथ लगायेगा उसके ये टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। इसी डर से कोई आगे नहीं जाता था; सभी लोग चुपचाप खड़े रहे।

सभी लड़के पुतली और शेर के विचित्र भाव से शंकित होकर एक किनारे खड़े थे। गुरुजी एकचित्त होकर संदूक पर लिखे लेख का मनन कर रहे थे। उनको पूर्ण विश्वास था कि लेख में खजाना प्राप्त करने के सभी उपाय लिखे हैं।

गुरुजी उस लेख का अर्थ ठीक से न लगा सके, अतः उन्होंने वह लेख जोर जोर से अपने शिष्यों को पढ़ कर सुनाया। अनंतर बोले—"बोलो, तुम्हीं लोग इसका अर्थ बोलो। शायद तुममें से किसी को आता हो!" तब उनके शिष्यों में से एक शिष्य विरूपाक्ष ने तत्काल उत्तर दिया—"गुरुजी महाराज, इसका अर्थ बिल्कुल सरल है। अगर किसी को न आयेगा, तो मैं बता दूँगा"। विरूपाक्ष एक चारण का लड़का था। नाम के ही अनुसार उसकी काया भी थी। किसी भी काम को वह सरल तरीक़े से न करके हमेशा उल्टे तरीके से करता था। अतः गुरुजी उसे विरूपाक्ष पंडित कहते थे और दूसरे शिष्य भी विनोद से उसे उसी नाम से पुकारते थे। पर सुनते-सुनते उसे सचमुच यह विश्वास हो गया कि मैं बड़ा बुद्धिमान्, स्वरूपवान् और

चालाक हूँ। उसका उत्तर कभी सही न होता था। पर वह बोलने में कभी न चूकता था।

विरूपाक्ष सब की ओर देखता हुआ बोला, "गुरुजी, अगर आप पहले ही मुझसे अर्थ पूछते हैं तो बताता हूँ। पर एक बार मैंने उत्तर दे दिया कि सब कहेंगे इसमें क्या था ? हम भी जानते हैं। इसमें विरूपाक्ष की क्या बुद्धिमानी है। इसीलिये कहता हूँ कि गुरुजी महाराज सबसे अलग अलग उत्तर पूछें। अगर सब यह बात मान लें कि उन्हें इसका अर्थ नहीं आता तो मैं बताऊँगा।"

विरूपाक्ष पंडित की बात सुनकर गुरुजी की समझ में नहीं आया कि हँसें या रोयें। कारण, पंडित विरूपाक्ष सचमुच अपने को स्वयं बुद्धिमान् समझने लगे थे।

परन्तु वे हँसते-हँसते बोले—"विरूपाक्ष पंडित, आप दूसरों के डर से अर्थ न कहें, यही अच्छा है। पहले दूसरों को अर्थ करने दो, फिर उनकी ग़लतियों को सुधार कर कहना। तब तक अपना अर्थ अच्छी तरह दबाये रक्खो, नहीं तो कोई उस पर झपट कर इस ख़जाने की तरह उड़ा ले जायगा। मुँह को हथेली से ढांक लो नहीं तो वह बाहर आ जायगा। नहीं तो कौन जाने कोई मुँह में ही हाथ डाल कर निकाल ले।"

गुरुजी की यह बात सुनकर सब लोग हँसने लगे और विरूपाक्ष को लक्ष्य करके बोले—"ठीक, विरूपाक्ष मुँह सँभाल लो। अगर हम उसमें से अर्थ नहीं निकाल लेंगे तो भी वह फूट पड़ेगा, सँभालो।"

इतना कह कर लड़के उस पर झपटे और उसके मुँह में हाथ डालने लगे। कोई उसकी चुटिया पकड़ कर के ही उसे नचाने लगा। पर गुरुजी ने यह देर तक न चलने दिया, बोले—"बच्चो, क्या करते हो ? विनोद करना हो तो मुँह से करो, हाथ से नहीं। तुम सभी उसे छेड़ोगे तो उसकी अक्ल ही मारी जायगी। विरूपाक्ष पंडित, मैं आपके कथनानुसार ही करूँगा। पहले सब लड़कों से अलग-अलग अर्थ पूछकर फिर तुमसे पूछूंगा।"

इतना कह कर गुरुजी ने संदूक पर लिखे हुये लेख का एक लड़के से अर्थ करने को कहा। बाहर से अर्थ सरल लगता था। अतः उसने कहा—"सिर काटने पर धन मिलेगा, न काटने पर लाभ होगा।" प्रत्येक बालक ने यही अर्थ दुहराया; अन्त में गुरुजी ने विरूपाक्ष पंडित से अर्थ पूछा। विरूपाक्ष पंडित ने मुँह बनाकर कहा—"गुरुजी मुझे भी यही अर्थ सूझ पड़ा था। मुझे लगा था कि अर्थ मुझे ही आता है,पर देखता हूँ प्रत्येक वही अर्थ करता है! पर गुरुजी, अर्थ मैंने ही पहले लगाया था। यद्यपि मैंने मुँह से बाहर नहीं निकला, तथापि लगता है कि लड़कों ने मेरे चेहरे पर से ही अर्थ पढ़ लिया। आप कुछ भी कहें, पर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि उन्होंने यह अर्थ मेरे चेहरे पर से ही लगाया है।"

गुरुजी यह सुनकर जोर से हँस पड़े और बोले—"तेरा चेहरा तो ऐसा है कि उस पर मन का कोई भी भाव आ ही नहीं सकता। पर फिर भी—तुझ में एक ऐसा गुण है, जो इन

सभों में नहीं है। वह क्या है, अभी प्रकट हुआ जाता है।"

यह सुनकर विरूपाक्ष की यह जानने की उत्सुकता बढ़ी कि गुरुजी मेरे जिस गुण की प्रशंसा कर रहे हैं, वह कौन सा है। यह समझने के लिए वह गुरु जी से बोला—"कौनसा गुण? कौनसा गुण? मुझे जल्दी वह गुण सबके सामने बता दीजिए, जिससे मैं देखूं कि कोई दूसरा वह गुण न ग्रहण कर ले।"

यह सुनकर गुरुजी अट्टहास करने लगे और लड़के भी पेट पर हाथ रखकर हँसने लगे। कितने तो उसके पास जाकर बोले—"विरूपाक्ष पंडित, हम बतायें वह गुण कौनसा है? हम में तो वह गुण कभी आया नहीं, अब क्या आयेगा, बतायें वह कौनसा गुण है?" विरूपाक्ष क्रोध से चिल्लाकर बोला—"बोलो, बताओ तो जानें?"

इस पर चन्द्र भाट बोला—"अरे 'मूर्खता'!"

बेचारा विरूपाक्ष खीझ गया। वह तो सचमुच अपनी प्रशंसा सुनने की आशा में था, उसे बड़ा बुरा लगा। गुरुजी महाराज ने उसके चेहरे पर की उदासी देखी तो उसे अपने पास खींचकर बोले—"लड़को, तुम अभी इसका मजाक उड़ा रहे हो, पर थोड़ी ही देर में देखोगे कि यह तुम से श्रेष्ठ ठहरता है। ये दूसरे लड़के तुझे व्यर्थ चिढ़ाते हैं, तू चिढ़ मत।"

इतना कह कर गुरुजी ने थोड़ा विचार किया, तत्पश्चात् सब लड़कों को अपने पास खड़ा करके बोले—"लड़को, तुम सब क्षत्रिय हो, कोई सोमवंशी है तो कोई सूर्यवंशी। तुम्हें आज तक

पुराण और इतिहास की कहानियां बता कर मैंने बुद्धिमान् बना दिया। धनुर्विद्या में भी तुम्हारी बराबरी के कम मिलेंगे। अब तुम्हें एक आवश्यक बात बताता हूँ। तुम्हें पता ही है कि पुराने ज़माने में शिष्यों के विद्या-ग्रहण करने के बाद गुरु-दक्षिणा देनी पड़ती थी। यह गुरु-दक्षिणा जिस प्रकार से गुरु चाहता था, उसी प्रकार से देनी पड़ती थी। गुरुओं ने कैसी-कैसी गुरु-दक्षिणाएँ मांगीं और शिष्यों ने कैसे-कैसे उन्हें दिया, इसका ज्ञान तुम्हें है ही। अब तुम्हारी भी गुरु-दक्षिणा देने की बारी है। यह खज़ाना यहाँ है। तुममें से जो कोई भी मुझे गुरु-दक्षिणा देना चाहे इस खज़ाने को मुझे अर्पण करे। बोलो, कौन यह ख़ज़ाना मुझे सौंपने को तैयार है?"

गुरुजी की बात सुनकर सब एक दूसरे का मुंह देखने लगे। वे पागलों की तरह इधर-उधर देखने लगे। इस पर गुरुजी बोले, "अरे ऐसे पागलों की तरह क्या देख रहे हो? मेरी बात का अर्थ नहीं समझे क्या? नहीं समझे तो पूछो, मैं समझाऊँ।" इस पर चंद्र भाट आगे आकर बोला—"ख़ज़ाना तो आपके सामने ही है। अब उसमें क्या करना है? मेरी समझ में नहीं आता, आप क्या चाहते हैं? ख़ज़ाना संदूक में है, संदूक तोड़ने पर ख़ज़ाना मिलेगा।"

उसकी बात सुनकर सभी शिष्यों ने उसका समर्थन किया। पर गुरुजी ज़ोर से हँस कर बोले—"बच्चो, तुम इस बात को

जितनी सरल समझते हो, वास्तव में यह इतनी सरल नहीं है।"

कविता का अर्थ तुमने ठीक समझा है सही; पर उसका अर्थ तुम्हारे हृदय तक नहीं पहुँच पाया है। मैं समझता हूं, सुनो। तुम सब इस खज़ाने को जितनी सरलता से पाने की बात करते हो, यह उतनी आसानी से नहीं मिल सकता। इसमें लिखा है कि यह खज़ाना सिर काटने पर मिलेगा। इसका अर्थ क्या है? इस खज़ाने की प्राप्ति एक रक्षक को प्रसन्न करने पर ही होगी। उसको संतुष्ट कैसे किया जाय, इसका उपाय लिखा है— "जो अपना सिर काटकर इसे अर्पण करेगा उसे ही यह निधि मिलेगी। बोलो, अपना सिर अर्पण करने को कौन तैयार है?"

यह अर्थ सुनकर सभी दबक गये। किसी की कल्पना में भी न आया था कि इतनी महँगी गुरुदक्षिणा देनी पड़ेगी। किसी को भी यह सम्भव न लगा। पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं कि इस गुरु-दक्षिणा की बात सुनकर शिष्यों की क्या हालत हुई होगी! सब एक दूसरे का मुँह देखने लगे। किसी से कोई उत्तर न देते बन पड़ा। गुरुजी ने शिष्यों का यह हाल देखा, तो बोले— "बच्चो! तुम चुप क्यों हो गए? बोलो, तुममें से कोई भी यह खज़ाना मुझे समर्पण करना नहीं चाहता? प्राण-दान दिये बिना खजाना हाथ नहीं लगेगा, यह निश्चित जानो। अब तुम में से कोई गुरु-दक्षिणा देना चाहता हो तो आगे बढ़े। यह रही तलवार, इससे सिर काट कर अर्पण करने पर देवी अपने वश में होकर खजाना देगी। इसमें कोई संदेह नहीं

है। तुम इतने जन हो; अगर एक ने भी प्राण-दान किया, तो देवी खुशी खुशी ख़ज़ाना दे देगी। पर बिना प्राण दिये ख़ज़ाना मिलने का नहीं। जिसकी इच्छा गुरु-दक्षिणा देने की और गुरु की अंतरात्मा को संतुष्ट करने की होगी, उसी के हाथ से यह आत्म-भय पूरा होगा। अतः अब शीघ्र ही मुझे अपना विचार कहो। यह तलवार तैयार है। जो इस भावना से तैयार हो कि गुरु-दक्षिणा देनी ही है, प्राण रहें या जांय, आगे आये। अगर कोई तैयार न हुआ तो मैं किसी को कोई दोष न दूँगा। केवल इतना होगा कि यह ख़ज़ाना मुझे न मिलेगा—बाक़ी सब शिक्षा-दीक्षा ठीक चलेगी। मेरा तुम पर ज़रा भी क्रोध न होगा।"

इतना कहकर गुरुजी चुप होकर लड़कों के मुँह की ओर देखने लगे।

इतने में ही विरूपाक्ष आगे आया। उसने गुरु जी के सामने रखी हुई तलवार म्यान से निकाल ली, और बोला—"गुरु जी महाराज, मैं अपना सिर अर्पण करने को तैयार हूँ। उसके करने के पूर्व कुछ मंत्र-तंत्र करना हो तो कर लीजिये। कुछ न करना हो तो वैसा कहिये। मैं अपना सिर काट कर देवी के आगे फैंक दूँगा।"

उसकी यह बात सुनकर सब आश्चर्य और भय से एक दूसरे की ओर देखने लगे। किसी के मुँह से कुछ न निकला।

गुरुजी ने उसे रुकने का इशारा करके कहा—"बस ठीक है। पर तुम्हारी बहुत कुछ शिक्षा-दीक्षा अभी बाक़ी है। अच्छा तो

तब हो जब विद्या पूर्ण कर लेने वालों में से कोई आगे आये। ऐसा होने पर तुझे और विद्या ग्रहण करने का मौक़ा मिलेगा। अगर कोई न आया तब तेरा ही बलिदान सही। बात यह है कि ख़ज़ाना हाथ में करने का मेरा बड़ा मन है; पर उस पर लिखी हुई कविता में यह भी साफ़ तौर पर लिखा है कि बिना प्राण-दान के वह मिलने का नहीं। देखें अब दूसरा कौन तैयार होता है?"

गुरुजी की बात सुनते ही फिर सभी छात्र एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। कितनों ने ही सोचा कि गुरुजी बड़े लोभी हैं। ख़ज़ाना लेने के पीछे शिष्यों के प्राण लेने वाले ये कैसे गुरु हैं? शिक्षा देने पर गुरु-दक्षिणा की मांग करते हैं यह तो ठीक है। पर यह दक्षिणा शिष्य के प्राण लेकर लेने से क्या मतलब है? उनकी विद्या का उस शिष्य को क्या लाभ हुआ? इस तरह के नाना प्रकार के तर्क-वितर्क तरुण शिष्यों के हृदय में आने जाने लगे। गुरुजी ने यह सभी विचार उनके चेहरों पर से पढ़ लिये। अन्त में चिरकाल तक राह देखने के बाद वे विरूपाक्ष से बोले—"विरूपाक्ष, एक तू ही खरा सिद्ध हुआ। मेरा भी मन ख़ज़ाना पाने को है; इसका उपाय वही सिर अर्पण करना मात्र है। आगे आ, और जो तूने तभी कहा था, पूरा करके दिखला।"

यह कहकर उन्होंने उसे आगे किया और तलवार उसके हाथ में दी। एक शिष्य को अपने आश्रम में जाकर पुष्प, गंध, और अक्षत लाने को कहा। एक की जगह पांच-सात दौड़े गये।

बहुतों की हार्दिक इच्छा थी कि किसी भी प्रकार से गुरुजी के सामने से दूर हो जायँ। कौन जाने कहीं गुरुजी नाम लेकर ही किसी को अपना सिर अर्पण करने को कहें ? इसी आशंका से कितने ही किसी-न-किसी बहाने से निकल गये। गुरुजी उनकी यह सब बातें कनखियों से देख और समझ रहे थे। इतने में ही पृथ्वीराज बड़ी गंभीर मुद्रा से आगे बढ़कर बोला—"गुरुजी महाराज, मैं आपकी इच्छा पूरी करूँगा। विरूपाक्ष अधूरी विद्या ग्रहण करके क्यों व्यर्थ अपना प्राण गँवाये ? मेरी विद्या आपकी कृपा से बहुत कुछ पूरी हो चुकी है। जो शेष है, उसे सीखने से क्या लाभ ? देवी को प्राण अर्पण करने के पश्चात् विद्या का महत्व ही क्या है ? आपकी तृप्ति ही हमारा धर्म है। जब आत्म-त्याग के बदले ही आप को तृप्ति मिलती है तो जीवन का और दूसरा उपयोग ही क्या है ? मैं इतनी देर तक आगे नहीं आया, इसके लिये क्षमा करें। मेरे मन में कुछ दूसरा ही विचार आ रहा था। पर विरूपाक्ष की अपेक्षा किसी दूसरे को ही इस त्याग के लिये तैयार होना चाहिये। मैं तैयार हूँ।" ऐसा कहकर हाथ जोड़ कर वह आगे आ खड़ा हुआ। गुरुजी ने किंचित् तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि से दूसरों की ओर देखकर कहा—"ठीक है, तेरे सदृश क्षत्रिय-पुत्र ही यह बलिदान कर सकते हैं। तू ही आगे आ और मेरी इच्छा पूरी कर।"

यह सब देखकर विरूपाक्ष को बड़ा बुरा लगा। वह आगे बढ़ कर बोला—"गुरुजी महाराज, मैंने ही पहले पहल तैयार

होकर तलवार को हाथ लगाया है। अब आप मुझे वापस क्यों लौटाते हैं? मेरे हाथ से इतनी तो सेवा स्वीकार कीजिये। इसके अतिरिक्त, पृथ्वीराज अभी छोटा है। आपने ही यह भी कहा था कि इसके हाथ पर चक्रवर्त्ती सम्राट् होने के लक्षण हैं, इसे जाने दीजिये। यह नहीं रहेगा तो संसार की हानि होगी। मैं रहूँ न रहूँ, दोनों बराबर हैं। मेरा शरीर आपकी सेवा में लग जाय, यही मेरी हार्दिक इच्छा है। यह पृथ्वीराज अपने माँ-बाप का इकलौता पुत्र है और इससे बड़ी-बड़ी आशायें हैं। अगर आप इसका प्राण लेकर ख़ज़ाना हस्तगत करेंगे तो संसार भी क्या कहेगा?"

गुरुजी चुपचाप बैठे रहे। इतने में ही पूजा का सामान लेकर कुछ शिष्य वापस आये। पर उनमें से कितने ही नहीं आये थे। गुरुजी ने यह देखने के लिये कि कौन-कौन आये हैं; कौन-कौन नहीं, एक दृष्टि फैंकी और अपने-आप हँस कर बोले—"बालको, तुममें से किसी को अपना सिर काटने की ज़रूरत नहीं। मैं पैसे के लोभ के लिये तुम्हारा सिर मांगने लगा, इस बात का मुझे पश्चात्ताप है। अतः अब तुम लोग निश्चिन्त बैठो। मैं अपने लोभ का प्रायश्चित्त करूंगा, अपना सिर देवी के चरणों में अर्पण करूँगा; तदनंतर सब धन केवल विरूपाक्ष को देना"। 'विरूपाक्ष को देना' सुनते ही विरूपाक्ष दोनों हाथ ऊपर उठा कर बोला—"छिः छिः, गुरुहत्या से प्राप्त धन मैं कभी न स्वीकार करूंगा। गुरुजी, आप विलंब न करें। मेरे पहले के कथनानुसार यह काम मुझे ही करने की आज्ञा दीजिये। आप पूजा भी न करें। मैंने

मन में ही पूजा भी कर ली है। अगर आप आज्ञा न देंगे तो मैं आपकी अवज्ञा करके अपना सिर अर्पण करूंगा। आप धन लेने में किसी तरह की आनाकानी न करें।"

गुरुजी ने दुखित होने का नाट्य करते हुये कहा—"अच्छा, तेरी ही इच्छा पूर्ण हो, पर मुझे तेरे ऋण से मुक्त होने के लिये पुनर्जन्म लेना पड़ेगा। कोई हर्ज नहीं। इस जीवन के जितने दिन बाक़ी हैं, इस निधि का उपभोग तो कर लूँ। तेरी इच्छा ही है, तो आगे आ; मैं पहले तेरी पूजा कर दूँ।"

ऐसा कहकर उसे आगे बुला कर गुरुजी ने पूजा शुरू की। उसके गले में माला पहनाई, सिर पर सिन्दूर लगाया और उसे सिर काटने की आज्ञा दी। यह प्रसंग देखकर सभी शिष्य चकित हो गये। उनके चेहरे पर गुरु के प्रति तिरस्कार की भावना स्पष्ट दीख पड़ी। गुरुजी ने उधर ध्यान न दिया। वे तो विरूपाक्ष की ओर देख रहे थे। वह शांत था। उसने धीरे से तलवार उठाई और गर्दन के पास ले गया। दूसरे हाथ से अपनी जटा पकड़ी और गुरु महाराज की 'जय जयकार' के साथ गर्दन पर तलवार मारने ही वाला था कि गुरुजी ने उसका हाथ पकड़कर सब की ओर देखते हुए कहा—"शाबास, विरूपाक्ष! सब को यह दिखाने के लिये कि तुममें उनकी अपेक्षा क्या विशेष गुण है, मैंने यह सब नाटक रचा था। जा, ऐसी हत्या करके मुझे खज़ाना लेने की इच्छा नहीं है, और न ही खज़ाना प्राप्त करना इतना मुश्किल है।"

खिर राखे धन संग रहे, सिर सज्जे धन जाय ॥

इसका अर्थ केवल इतना ही है कि जब तक इस संदूक पर दोनों सिंहों और देवी का मस्तक मौजूद है यह धन किसी को मिलने का नहीं, पर सिर काटने पर ही धन का लाभ होगा, दूसरों के सिर के बलि की आवश्यकता नहीं है।

दूसरे सब शिष्यों ने अब संतोष की सांस ली। उनके चेहरे पर से भय, तिरस्कार आदि के भाव लुप्त हो गये और मंडली वहां से चल पड़ी।

दूसरे दिन गुरु की आज्ञानुसार शिष्यों ने पुतली और सिंहों की गर्दन अलग कर दी और संदूक खुल गया। संदूक खुलते ही आंखों को चकाचौंध कर देने वाली सम्पत्ति उनकी दृष्टि में आई।

—पाँचवाँ परिच्छेद—

विमला और जयचन्द

पिछले चार परिच्छेदों की वर्णित घटनाओं को आज दो वर्ष हो गये हैं। इस अवधि में राजा अनंगपाल ने विमला का नाम भी ज़बान से नहीं निकाला। कमला को यह सब देखकर बड़ा कष्ट होता था कि केवल मेरे कारण पिता और मेरी बहिन में इतना वैमनस्य बढ़ गया। वह हर समय सोचा करती कि किस उपाय से दोनों में फिर से प्रेम हो जाय, पर कोई उपाय उसकी समझ में न आता। कमला ने अपने पति से भी प्रार्थना की कि किसी

तरह वे इस वैमनस्य को मिटाने का मार्ग ढूंढ निकालें। पति ने श्वसुर अनंगपाल और विमला को पति-सहित अपनी राजधानी में आमंत्रित किया। उनका विचार था कि एक बार सब साथ मिल जायँगे तो वैमनस्य दूर होकर आपस में फिर प्रेम बढ़ जायगा। पर मनुष्य जिस कारण से कोई कार्य करता है कभी-कभी वह बिलकुल उलटा फल देता है।

पृथ्वीराज का विद्याभ्यास पूरा हो गया था। अनंगपाल ने सोचा कि "कुछ दिन के लिए उसे पिता के घर भेज दूं, और मेरा भी तपोवन जाने का समय हुआ—मैं भी कुछ दिन कमला के घर हो आऊं।" इस विचार से उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

अनंगपाल ने जब निमन्त्रण स्वीकार करने की सूचना दी तो सोमेश्वर के मन में विशेष आशा उत्पन्न हुई। उन्होंने विजयपाल (विमला के पति) को बड़े आग्रह-पूर्वक लिखा। विजयपाल ने पत्र पढ़कर विमला से कहा—"सोमेश्वर का इतना आग्रह-भरा पत्र आया है, तो न कैसे कहें? जाना ही अच्छा है।" परन्तु विमला तो डसने वाली सर्पिणी थी, उसे अपने पति की बात पसंद न आई। "मैं, और उस चांडालिन के घर जाऊँ? इस जन्म में तो मैं उसका मुंह भी नहीं देखूंगी? उसके यहां पैर रखना तो बड़ी बात है, मैं आप से कहे देती हूं कि अगर आप में आत्माभिमान है तो निमंत्रण कभी न स्वीकार करें। अगर वह चांडालिन मरने भी लगे और मुझे बुला भेजे, तोभी मैं न जाऊंगी;

अगर मैं मरने लगी और वह मुझे देखने आई तो आँखों पर हाथ रख कर उसे "अभिशाप देते हुए प्राण छोड़ूंगी।"

विमला की ऐसी ज़हर से बुझी हुई बात सुनकर विजयपाल को आश्चर्य हुआ। उन्हें इस बात का अनुभव था कि विमला का स्वभाव-जिद्दी और क्रोधी है। परन्तु उस हठ का नतीजा यहां तक पहुंच जायेगा, यह उनकी कल्पना में भी न आया था। उन्होंने आज तक उसकी कितनी विलक्षण बातें सुनी थीं, पर आजकी यह बात सुनकर उनको बड़ा क्रोध आया। क्रोध का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने सांढू सोमेश्वर का आमत्रण स्वीकार करने का निश्चय किया, अगर पत्नी नहीं आती, तो न सही। उन्होंने निश्चय किया कि उसे छोड़कर केवल अपने लड़के को लेकर ही जायंगे।

पति का यह निश्चय सुनकर विमला को इतना क्रोध चढ़ आया कि उसे किसी बात की सुध न रही "क्या, क्या!" क्रोध से थरथराती होंठ चबाती हुई वह बोली—"क्या तुम मेरा लड़का उस डाकिन के घर ले जाओगे, सो भी विना मेरे उसे लेकर जाओगे! मेरे लड़के को वह जान से मार देगी। वह जादू-टूना जानती है—उस पर कोई जादू डाल देगी, मेरे लड़के की बलि दे देगी। क्या तुम्हारे मन में यह विचार नहीं आया है। अगर इसे ले जाओगे तो मैं प्राण दे दूंगी। मैं उसे अपने पास से हटने तक न दूंगी, आप भी न जायं।"

ये सभी वाक्य कहते हुये विमला का रूप बड़ा भयंकर हो

गया था। उसकी वेणी के बाल छूट गये, कपाल के पास के बाल खड़े हो गये। आंखों में इतना रक्त छा गया मानों अभी आंखों से .खून चू पड़ेगा। नाक से भयंकर फुफकार निकल रही थी। उसका मुँह भी इस तरह लाल हो गया कि डर लगने लगा कि कहीं उसमें से खून न चूने लगे। विजयपाल भी उसकी यह हालत देखकर घबरा गये और उसने सोचा कि जब इस बात से इसका हाल इतना बुरा हो गया है तो मुझे भी कुछ सोचना-विचारना चाहिये। आज तक कमला का जो वर्णन उन्होंने सुन रखा था उसके अनुसार वह बड़ी सात्विक, साध्वी और सर्वगुण-सम्पन्ना थी। उससे दो-चार शब्द बात कर सब को आनन्द होता है, पर विमला इतनी क्यों चिढ़ गई है ? हां, अनंगपाल ने उसके लड़के को अपनी देख-रेख में विद्याभ्यास करवाया है। शायद जयचन्द के वहां रहने पर अनंगपाल ने जयचन्द पर इतना प्रेम नहीं दिखाया हो; पर इसके कारण इतना चिढ़ जाना उनकी समझ में नहीं आया, तथापि उस समय कुछ बोलना उचित न समझ कर वह दबे पांव वहां से बाहर निकल गये।

पर अपनी पत्नी को इतना नाराज़ कर सांढू और श्वसुर से मिलना विजयपाल को उचित न जचा। विजयपाल बुद्धिमान् था, तुरन्त जान गया कि कमला और उसके पुत्र के वैमनस्य के कारण ही विमला की यह दशा हुई है। यह स्वयं लोभी न था—उसके राज्य का विस्तार काफ़ी था। अतः यदि अनंगपाल ने अपना राज्य पृथ्वीराज को दिया तो उसे ज़रा भी ईर्ष्या न होगी।

पत्नी का स्वभाव उसे मालूम ही था, अतः उसने इस प्रपंच में हाथ न डालने का ही निश्चय किया। अपना जितना राज्य है उतना ही रखकर उसमें ही क्षत्रियोचित पराक्रम के साथ जयचन्द राज्य करे। कोई किसी को राज्य दे तो व्यर्थ मैं क्यों चिन्ता करूं, यह सोच उन्होंने जयचन्द को लेकर अजमेर जाने का निश्चय दृढ़ किया। अपनी पत्नी को बताये बिना उन्होंने अपने जितने सेवकों और सिपाहियों को लेकर जाना था, अमुक दिन तैयार रहने का आदेश दिया। उन्हों ने जयचन्द को भी तैयार रखने का आदेश सेवकों को दिया। विमला के कान तक यह बात पहुँचते ही संताप से उसका चेहरा लाल हो गया। अपना इतना विरोध दिखाने पर भी उससे अपनी अवज्ञा न देखी गई और उसने निश्चय किया कि मैं देखूंगी कि ये लोग कैसे जाते हैं ? उसने अपना निश्चय किसी को न बताया।

चार दिन बीत गये। पांचवें दिन मंडली के जाने की तैयारी होने लगी। परन्तु उसके पहले कि मंडली प्रस्थान करे एक घटना घटित हुई।

मध्यरात्रि का समय था। विजयपाल ने एक रोज़ पहले ही जयचन्द को गुरु-गृह से बुलाकर एक सजे-सजाये दीवानखाने में रखा। दूसरे रोज़ जाने की तैयारी थी। विमला को सब हाल मालूम था। इधर विजयपाल ने यह समझकर तैयारी की थी कि विमला को कोई हाल मालूम न होगा। पर विमला भी सावधान थी और उसने भी अपने मन में कुछ निश्चय कर लिया था।

विजयपाल को ऊपरी तौर पर उसने किसी प्रकार न रोका, जिससे विजयपाल को कोई शक न हो। उसने दास-दासियों के मुँह से राजा के कान तक यह बात पहुँचाई कि राजा ने मेरा बड़ा तिरस्कार किया है जो मेरे मना करने पर भी अजमेर जा रहे हैं। विजयपाल यह सुनकर खुश हुए और उन्होंने समझा कि थोड़ी देर में विमला यह भी कहला देगी कि वह भी आने को तैयार है। सायंकाल को राजा ने सुना कि विमला भी चलने की तैयारी कर रही है—"जब पति की इच्छा ही है तो मैं क्यों बीच में पड़ूँ? इतना क्रोध करके मैंने भूल की। अब मैं उनसे अपनी भूल के लिये क्षमा माँग लूँगी।" उसने ऐसा कहा और उसे किसी तरह पति के कान तक पहुँचाने का प्रबन्ध भी किया। राजा ने सोचा कि सब मामला शान्त हो गया है और नौकरों आदि को उन्होंने आदेश दिया कि चार घड़ी रात रहे ही प्रस्थान करना है, जयचन्द को जगा लेना। यह कहकर राजा सोने चले गये और सब जगह वातावरण शान्त हो गया।

आधी रात हुई। सभी पहरेदार सो गये थे, ऐसे समय ही बिखरे बालों वाली, एक हाथ में दीपक लिये हुए और दूसरे हाथ में कटार लिये हुए एक भयंकर मूर्ति ने जयचन्द के कमरे में प्रवेश किया। द्वारपाल की आँख ज़रा लग गई थी; पर पैरों की ध्वनि सुनकर उसने आँखें खोलीं और "कौन है?" कहकर चिल्लाने ही वाला था कि उस भयंकर दिखने वाली स्त्री ने अपनी नाक पर उँगली रखकर उसे चुप रहने का इशारा किया। उस

स्त्री को पहचान कर द्वारपाल आदर भाव से खड़ा हो गया और उसके अन्दर जाने का रास्त छोड़ दिया। स्त्री ने अतिशय मन्द आवाज़ में पूछा—"जयचन्द के साथ कौन सोया है?" उसने धीमे से उत्तर दिया—"केवल चामुण्डराय हैं, दूसरा कोई नहीं।" यह सुनकर स्त्री को समाधान हुआ, अनन्तर वह अन्दर गई। सोने के सुन्दर पलँग पर प्रगाढ़ निद्रा में डूबे जयचन्द को उसने देखा। वह पलँग के पास गई और लड़के के चेहरे पर दीपक का प्रकाश डाल कर देखा और ज़ोर से बोली—"बेटा, तेरी मां के हृदय में भयंकर उथल-पुथल मची है। पर तू चुपचाप सो रहा है; उठ, पागलों की तरह सो मत।" उसके यह शब्द सुनकर जयचन्द तो नहीं जगा पर चामुण्डराय हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ। भयंकर मूर्ति देखकर वह चिल्लाने को हुआ कि स्त्री ने उसके पास जाकर कहा—"चुप, चुप। दूसरा कोई तुम्हें खाने नहीं आया है। मैं हूँ। तू तो ऐसा घबरा गया कि जैसे भूत देख लिया हो। मुझे देखकर तो इतना डर लगता है, पर मिलने वाली डाकिनी को देखकर डर न लगेगा? चुप रहो, मैं जय को उठाती हूँ। उसे क्या मालूम है कि उसकी माता के हृदय में क्या बवंडर उठ खड़े हुये हैं। ऐसे ही सो-सोकर राज्य करेगा और क्षत्रियों के धर्म का पालन करेगा? और तू भी उसे ऐसा ही सोने देगा? ठहर, मैं उसे उठाती हूँ और......।

आगे वह कुछ न बोली। उसे हाथ में पकड़ कर वह जयचन्द के पलँग के पास गई। अब उसने जयचन्द को आन घेरा। वह

जाग पड़ा। पहले तो वह भी उस मूर्ति को देखकर घबरा गया; पर तुरन्त ही पहचान गया कि माताजी हैं। वह उठकर बोला—"माताजी, इतनी रात को तुम यहां कहाँ? मैं आने पर ही तुझे पूछ रहा था, पर पिता जी ने तेरे पास जाने ही न दिया। उन्होंने कहा—सुबह हम जल्दी प्रस्थान करेंगे, सो जाओ। अगर उसे तुमसे मिलना ही होगा तो हमारे साथ चलेगी, नहीं तो आगे-पीछे आयेगी। मां, तुम हमारे साथ आओ न? पिता जी ने ...

परन्तु विमला ने उसे आगे न बोलने दिया; स्वयं बोली—"चुप रह लड़के। वहां जायगा तो वह चांडालिन तेरे प्राण लेकर छोड़ेगी। इसीलिये मेरे प्राण तेरे लिये छटपटा रहे हैं—उस चांडालिन के घर में पांव रखना मानो आग में कूदना है। मैं केवल यही देखने आई हूँ कि तू कितना चतुर है? जो-जो बातें मैंने तुझसे कह रखी हैं तू उनका पालन करता है कि नहीं?"

"मां, गुरुजी भी कहते हैं कि जयचन्द तू चतुर, बहादुर और सभी विद्याओं में निपुण है। उन्होंने कहा कि वहां तेरे नाना आने वाले हैं; उनसे कहना कि 'रामगुरु के शिष्य पृथ्वीराज और द्रोणाचार्य के शिष्य जयचन्द की परीक्षा लीजिये। फिर धनुर्विद्या में कौन कितना निपुण हो गया है, पता चल जायगा।"

विमला देवी अपने बेटे की बात बड़े प्रेम से सुन रही थी। उसको सुनकर बोली—"यह सब तो ठीक है। पर तेरी विद्या का उपयोग ही क्या है? इस उम्र में प्रवीण होकर भी तू उस चांडालिन का क्या बिगाड़ पायेगा। तू शपथ खा, अपनी माँ के

पैरों की शपथ खाकर प्रतिज्ञा कर कि अगर तेरे नाना ने दिल्ली का राज्य पृथ्वीराज को दे दिया तो तू उससे लड़ाई करके, कैसे भी करके उससे वह राज्य ले लेगा, और उसे बंदी बनाकर अपना दास बनायेगा। यह सब देखने के लिए मैं जीती रह गई तो बड़ा अच्छा है; अगर नहीं तो मैं पिशाचिनी होकर तेरे आस-पास तब तक घूमती रहूंगी जब तक तू यह काम पूरा न कर लेगा। उस चांडालिन ने पिताजी को फुसला कर अपने लड़के को उनका प्यारा बना दिया। अब वे उसे अपना पुत्र ही समझते हैं। अब उसे राज्य देकर वे तपस्या करने जायँ तो उससे राज्य छीनना चाहिए। नहीं तो मेरी आत्मा को शांति न मिलेगी। अगर इसके पहले मुझे कोई स्वर्ग ले भी जाने लगेगा तो नहीं जाऊंगी, यहीं रहूँगी। तू मेरी बात समझ रहा है न? इतनी रात को मैं तेरे कमरे में किस मतलब से आई हूँ। तू मेरा कहा मानेगा कि उनका? बोल! मेरा कहना है कि तू उनके साथ उस चांडालिन के घर मत जा। अगर तुझे अपनी मां से प्रेम है तो तू मेरा कहा मानेगा। हम-तुम चार पांच दिन के लिए कहीं चल देंगे। कहाँ चलना है, इसकी व्यवस्था मैंने कर ली है। उनका भोला स्वभाव है, तुझे लेकर उसके घर जाना चाहते है। मैं तेरे साथ न रहूँगी, क्योंकि उसके घर मुझे क़दम भी नहीं रखना है—उसका मुँह भी नहीं देखना है। मेरी अनुपस्थिति में वह तेरा कोई अनिष्ट अवश्य करेगी। तेरी और उसके पुत्र की परीक्षा लेने पर अगर तेरा कोई भी गुण पिता जी की निगाह में आ गया, तो वह तुझे

छोड़ने की नहीं। इसीलिये तो कहती हूँ कि तू अब छोटा नहीं है, मेरी प्रत्येक बात समझ। तू उनके साथ मत जा। मेरे साथ हिमालय की तराई में चल, जहां मेरे गुरु अघोरघंट कापालिक रहते हैं। वहीं हम लोग कुछ दिन रहेंगे। वे तुझे मंत्र-विद्या, अस्त्र-विद्या और शस्त्र-विद्या में निपुण बना देंगे। उनकी तरह इन विद्याओं में प्रवीण आज इस भरतखंड में कोई नहीं है। मैंने उन्हें तुझे उनके चरणों पर डालने की सूचना देदी थी। मैं उनकी प्रिय शिष्या हूँ, यह बात आज तक कोई नहीं जानता। आज सर्वप्रथम मैं तुझसे ही कह रही हूँ। मेरे जयचन्द, जैसा माता का प्यार होता है वैसा पिता का नहीं। वे समझते नहीं हैं। पृथ्वीराज के मार्ग में कोई कंटक न आये, इसके लिये तेरी मौसी हर एक उपाय करेगी। इसलिये मैं तुझे शेर की मांद में हरिण के समान न जाने दूँगी। देख, अब समय नहीं है। अभी का अभी उठ, चल। आलस मत कर, जल्दी उठ।"

ऐसा कहकर उसने जयचन्द को उठाया। या यह कहिये कि पलंग पर से नीचे ला खड़ा किया। बाद में वह चामुण्डराय की ओर देखकर बोली—"लड़के, थोड़ी ही देर में लोग जयचन्द को उठाने आयेंगे; पर ख़बरदार, एक शब्द भी इस बारे में न कहना, सो जा। जयचन्द को लोग उठाने आवें तो जागते हुए भी सोने का बहाना करना। तुझे कोई उठाये तो कहना—"जयचन्द यहीं तो सोया था, मालूम नहीं कहां गया।" अगर मेरे आने और जयचन्द के ले जाने के बारे में कुछ भी बोलेगा तो ठीक न होगा।

तू खुशी-खुशी उनके साथ जा। वह चांडालिन तेरा कुछ न बिगाड़ेगी। अगर तू यह बता भी दे कि इसे मैं ले गई हूँ तो यह कभी न बताना कि कहां ले गई हूं। यह बात तुझे छोड़कर किसी को मालूम नहीं है। तू लेट जा, मैं ओढ़ा देती हूँ।

ऐसा कहकर उसे सुलाकर वह बाहर निकली। पहरेदार को कुछ धन देकर उसने धीरे से कहा कि मेरे आने के बारे में किसी को न बताना। कम से कम एक घंटे तक तो इस बात से इन्कार कर देना। एक प्रहर के बाद कह देना कि इसे मैं ही आकर ले गई हूँ, तुझे कोई सजा न होगी। एक घंटे बाद तो मैं कहां की कहां जा पहुँचूँगी। द्वारपाल ने सब बातें मान लीं और मूर्ति विमलादेवी के अन्तःपुर में जा पहुँची।

राजा विजयपाल लड़के को स्वयं उठाने आये तो उसका ठौर-ठिकाना ही न था। प्रहर भर बाद तक कुछ पता न लगा। बाद में यह जानने पर कि उसे विमला देवी ले गई हैं, उनके अन्तःपुर की बड़ी खोज की गई, पर कुछ भी पता न चला।

★

—छठा परिच्छेद—

अनंगपाल का निश्चय

अपने पुत्र और पत्नी के अदृश्य होने की बात जानकर राजा विजयपाल को आश्चर्य, क्षोभ और खेद हुआ। उन्होंने चामुंडराय से फिर प्रश्न किया—"तुम जयचन्द के साथ ही सोये थे, उसे कौन लेगया, जो वह खुशी-खुशी चला गया। जयचन्द तुम्हें

छोड़कर कहीं न जायगा—जायगा तो कहकर। अतः साफ़-साफ़ बतादो क्या बात है?"

परन्तु चामुण्डराय बिल्कुल अनजान बन कर बोला—"आपने यहां आकर जब पूछा कि जयचन्द कहां है, तभी तो मेरी नींद टूटी है। नींद आने के पूर्व वह इतना-भर कह रहा था कि मां के दर्शनों के लिये पिताजी नहीं जाने देते, क्या करूं? अगर मैं पिता की आज्ञा लेकर न जाऊँगा तो वे नाराज़ होंगे और अगर माता के दर्शनों के लिये न गया तो मन को शान्ति न मिलेगी। गुरु के घर से आकर अगर मैं उनसे मिले बिना ही चला गया तो वे भी क्या कहेंगी? उनका मुझ पर इतना प्रेम है; पर मुझे उनका दर्शन करना भी मना है। वह ऐसा ही कहता कहता सो गया था और मैं भी सो गया। पता नहीं शायद विमला काकी आकर उठा ले गई हों। मुझे कुछ पता नहीं है। द्वारपाल को पता होगा। वह जो कहे, वही सच है।"

चामुण्डराय ने उपरोक्त बातें बड़ी सरलता और स्वाभाविकता से कहीं। वह वास्तव में नाटक कर रहा है, इसकी किसी को कल्पना भी न थी। वह जयचन्द से उम्र में छोटा ही था। दोनों में चार वर्ष का अन्तर था। अब द्वारपाल को सजा का डर लगा। वह बोला—"मैं बड़ा सावधान था, पर ज़रा आँख लग गई थी, इतने में ही शायद माताजी आकर युवराज को ले गई हों, मुझे खबर नहीं लगी। आप आये नहीं होते तो मैं ऐसे ही पहरा देता बैठा रहता। इस असावधानी के लिये आप जो भी सजा दें, मुझे शिरोधार्य है।"

एक बार भूल होने पर और उसे स्वीकार कर लेने पर भूल करने वाले के प्रति गुस्सा कम हो जाता है। यही भावना राजा विजयपाल की थी। उन्होंने द्वारपाल को झूठा न समझकर मूर्ख समझा। उन्होंने उसे मृत्युदण्ड की धमकी दी, क़ैद करने की आज्ञा दी, बार-बार प्रश्न किया, परंतु व्यर्थ। उसका कहना एक ही था, अतः राजा ने उसे क़ैद करवा दिया। होते होते एक प्रहर बीत गया। द्वारपाल ने राजा का दुःख देखकर उन्हें अपने सामने ले आने की विनती की। उसने सोचा कि अब सच कहने में हर्ज नहीं है, अतः सब बात साफ़-साफ़ सुनादी—"अर्द्धरात्रि के समय महादेवी विमला आकर युवराज को अपने अन्तःपुर में ले गईं। उन्होंने यह बात एक प्रहर तक किसी को न बताने की कड़ी आज्ञा दी थी। अतः मैं उसे तोड़ नहीं सकता था। इसके आगे मुझे कुछ नहीं मालूम, जो कुछ सज़ा दी जायगी, मैं भोगने को तैयार हूँ।"

द्वारपाल की बात सुन कर विजयपाल को विश्वास हो गया कि विमला जयचन्द को लेकर कहीं चली गई है।

राजा विजयपाल को क्रोध बहुत आया, पर क्या करते। अपनी स्त्री अपने लड़के को लेकर कहीं चली गई है तो गुस्सा किस पर उतारें? उन्होंने अंतःपुर की प्रत्येक स्त्री को बुला बुला कर पूरी पूछ-ताछ की। उन्होंने विमला की विश्वासपात्र दासी से भी अनेक प्रश्न किये, पर उसे भी कुछ न मालूम था। अंत में वे

अपनी स्त्री के इस आततायीपन पर सोचते बैठे रहे; पर उन्होंने अजमेर जाने का निश्चय नहीं बदला। अपने साथ चामुंडराय को लेकर उन्होंने अजमेर के लिये प्रस्थान किया।

अजमेर पहुँचकर उन्होंने सब हाल राजा अनंगपाल को कह सुनाया। राजा अनंगपाल को भी बड़ा बुरा लगा, पर क्या करते? तीनों राजा एकत्रित थे, पर विमला और उसके पुत्र को खोज लाने का सामर्थ्य किसी में न था। उन्होंने यह जान लिया कि कमला का मुँह न देखने और जयचन्द को कमला से बचाने की मूर्खतापूर्ण शंका के कारण ही विमला ने यह दुःस्साहस किया है। इस अकारण-विद्वेष की बात से सब को बुरा लगा।

कमला के कान में यह बात पहुँचते ही उसे मरणप्राय दुःख हुआ। उसने सोचा कि मेरे कारण ही यह सब अप्रिय प्रसंग आ रहे है, अतः मैं प्राण त्याग दूँ। वह रोते-रोते बीमार पड़ गई। अनंगपाल और उसके पति ने उसे बहुत समझाया-बुझाया, पर सब व्यर्थ। राजा विजयपाल ने भी उसे समझाने की बहुतेरी कोशिश की, पर उसने एक न सुनी।

आखिर चार दिन बाद राजा अनंगपाल ने पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य देकर तपोवन जाने का निश्चय पूरा करने की ठानी। कमला इस निश्चय को सुनकर प्रसन्न होने की जगह अति खिन्न हुई। बहिन विमला पुत्र के साथ इस तरह न मालूम कहाँ चली गई है और पिता मेरे पुत्र को राजगद्दी दे रहे हैं। उसे अच्छा न लगा, बोली—"पिताजी, आप अच्छा काम नहीं कर

रहे हैं। मैं स्वप्न में भी आपको अनुमति न दूँगी। आप पहले विमला बहिन की खोज करवाइये। जयचंद के आने पर अगर आपको तपस्या के लिये जाना ही हो तो दोनों को समान रूप से राज्य बांट दीजिये। फिर किसी को यह कहने को नहीं रहेगा कि एक पर आपका प्रेम अधिक है, दूसरे पर कम।"

परन्तु राजा अनंगपाल हँस मात्र दिये। थोड़ी देर तक तो कोई उत्तर ही न दिया। अनन्तर उसे पास बुलाकर बोले—"बेटी, तेरा हाल देखकर मुझे आश्चर्य होता है। मैंने तुझसे कहा नहीं था कि वह तेरी भांति नहीं है। उसे आधे राज्य से संतोष न होगा, किसी भी बात से सन्तोष न होगा। वह चाहती है कि मेरा सब राज्य जयचंद को ही मिले। तू और तेरी सखी-सहेलियाँ उसकी दासी बन कर रहें। उसके मन का पाप मैं स्पष्टरूप से जान गया था। फिर उसने अपने मन की बात स्पष्ट रूप से कह भी दी थी। उसके मन की यह भावना कभी जाने की नहीं। वह बड़ी लोभी है। अगर उसके स्वभाव की छाया जयचन्द पर भी पड़ गई, तो राज्य के लोभ में आकर वह न मालूम क्या-क्या करेगा। विमला बड़ी चालाक है। वह अभी पता नहीं कौन-कौन सी कारस्तानियां करेगी। तू मन में जरा भी बुरा न मान। वह जहाँ भी गई होगी, किसी मतलब से गई होगी। व्यर्थ जानेवाला जीव वह नहीं है। तू मन का विषाद निकाल दे। हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठने के योग्य केवल पृथ्वीराज ही है। मैंने उसकी परीक्षा कर ली है। उसकी जन्म-पत्री से साफ़ पता चलता है कि

वह चक्रवर्त्ती सम्राट् होकर हस्तिनापुर का नाम बढ़ायेगा, इसलिये अब तू व्यर्थ शंका न कर और न मुझे ही शंका करने दे। उस लड़की ने मुझे इतना दुःख दिया है कि मैंने उसका मुंह तक न देखने का निश्चय किया है, अब और क्या कहूँ ?"

राजा विजयपाल के इतना कहने पर बेचारी कमला की क्या चलती? उसने भी अपना दुःख छोड़ दिया। राजा अनंगपाल ने अपने दोनों जमाइयों को अपना निश्चय बता दिया कि अमुक दिन पृथ्वीराज का राज्याभिषेक करके मैं अपने गुरु धौम के आश्रम में तपस्या के लिये चला जाऊँगा। सोमेश्वर को खराब लगने का कारण ही न था; विजयपाल भी उदार-हृदय थे, उन्होंने बुरा न मनाया। उन्होंने राजा अनंगपाल से कहा—"मैं भी आपसे सहमत हूँ। जयचन्द को किसी बात की कमी नहीं है। उसमें अगर सामर्थ्य होगा और राज्य-विस्तार करने की इच्छा होगी तो पृथ्वी बहुत बड़ी है।" यही नहीं, उन्होंने अनंगपाल को यह भी आश्वासन दिया कि वे प्रत्येक रूप से इस काम में मदद देने से न चूकेंगे।

राजा अनंगपाल तो यह चाहते ही थे। उन्हें डर था कि पृथ्वीराज को राज्य देने के बाद कहीं विजयपाल उस पर चढ़ाई करके व्यर्थ झगड़ा न पैदा करे। इस आश्वासन के बाद उनका सारा डर दूर हो गया। विजयपाल का निर्लोभी स्वभाव देखकर उन्हें आनन्द हुआ। उन्हें इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह विजयपाल, जो अपने हाड़-मांस का भी नहीं है, अपने प्रति इतना

मान रखता है और एक मेरी लड़की है जिसने मुझे इतना सताया है। उन्होंने विजयपाल के क्षत्रियोचित गुण की बड़ी प्रशंसा की और विजयपाल से राज्याभिषेक के समय दिल्ली में उपस्थित रहकर मदद करने का वचन लिया।

उन्होंने विजयपाल से यह भी अनुरोध किया कि वे पृथ्वीराज का अभिषेक अपने पुत्र का अभिषेक समझें और वह सम्पन्न हो जाने पर उनके साथ आश्रम में जाकर वहाँ की सब व्यवस्था देखने के बाद ही अपने गुरु के पास द्रोणागिरि जायँ।

इस तरह से अनेक तरह की बातें करके अनंगपाल ने उसे सम्मानित किया। दो चार दिन और रहने के पश्चात् अनंगपाल कमला और पृथ्वीराज को लेकर दिल्ली आये। राजा सोमेश्वर का ठीक मुहूर्त के दिन आने का निश्चय हुआ। अनंगपाल ने मुहूर्त वगैरह तो ठहरा लिया, पर उसके पहले उनका मन एक बार अपने गुरु धौम के आश्रम की व्यवस्था देख आने का था। 'धौम' नाम से प्रसिद्ध अनंगपाल के गुरु अनेक क्षत्रिय राजाओं के गुरु थे। उन्होंने राजा अनंगपाल को आग्रहपूर्वक उपदेश दिया कि वे अब अधिक राजभोग के लालच में न पड़कर अपने परलोक के कल्याण के निमित्त कुछ व्यवस्था करें और वृद्धावस्था में प्राचीन काल के क्षत्रियों के समान वन में जाकर तपस्या करें। उस उपदेश के अनुसार चलने के लिये कारण भी मौजूद था। अपने ही आश्रम के पास दूसरा आश्रम बनवाकर राजा अनंगपाल जनक के समान वेदान्त के विचार में समय बितायें, हमारा और राजा का

तर्क-वितर्क हो, सहवास हो, यही मुनि की इच्छा थी। इसी विचार के अनुसार वैतरिणी नदी के क़रीब अपने आश्रम से कुछ ही दूरी पर उन्होंने अनंगपालाश्रम तैयार करवाने की आज्ञा दी। पुत्र धनंजय की मृत्यु के पश्चात् राजा ने तपश्चर्या में ही जीवन बिताने का निश्चय किया। पर इसके पहले किसी को राज-गद्दी सौंप कर जाना था। इसीलिये उन्होंने अपने दोनों नातियों—जयचंद और पृथ्वीराज को अपने पास बुलाकर उनकी परीक्षा लेनी चाही कि दिल्ली का राज्य करने के योग्य कौन है? और अन्त में उन्होंने पृथ्वीराज को अपना उत्तराधिकारी चुना। दो वर्ष तक उन्होंने पृथ्वीराज को अपनी इच्छानुसार विद्याभ्यास करवाया। "पर इसी तरह विचार करते-करते मैं एक रोज़ यमलोक पहुँच जाऊँगा" यह सोचकर उन्होंने अपने विद्वान् गुरु के संसर्ग में ही शेष जीवन बिताने की व्यवस्था की। पर दौहित्र पृथ्वीराज के राज्याभिषेक और आत्म-संतोष के लिये उन्होंने वैतरिणी नदी के पास जाकर सभी प्रबन्ध देखने का संकल्प किया।

हिमालय पर्वत शान्ति का घर है। इस स्थान में कितने ही पवित्र ऋषि, साधु पुरुष, धर्मात्मा अपने चित्त को शान्त करने और परमात्मा के चिन्तन में जीवन बिताने के लिये आश्रमों में रहते हैं, यह बात हम आज तक सुनते आये हैं। उस समय भी ऐसे पुरुष वहां जाया करते थे। हिमालय की भिन्न-भिन्न शाखाओं में से भिन्न-भिन्न सुन्दर नदियां बहती थीं। इन्हीं सुन्दर नदियों के किनारे प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों के आश्रम हुआ करते थे।

उस प्रदेश में उस समय प्रवास करते समय अनेक आश्रम और ऋषि-मुनि दृष्टिगोचर होते थे। एक बार उस आरण्यिका में पहुंचने पर चित्त को वास्तव में शान्ति प्राप्त होती थी--कारण, वह प्रदेश वास्तव में पवित्र और स्मरणीय था।

वैतरिणी भी ऐसी ही छोटी नदियों में से एक थी। उसकी तरंगें बड़ी चंचलता से बहती थीं और नदी भी टेढ़ी-मेढ़ी होकर बहती थी—शायद इसीलिये उसका नाम वैतरिणी पड़ा। इस नदी के किनारे चार-पाँच आश्रम थे—उनमें से अनंगपाल के गुरु धौम ऋषि का आश्रम सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण था। उन दिनों वहाँ विख्यात कुलगुरु के नाम से यही धौम मुनि थे। उनके आश्रम में विद्याभ्यास के निमित्त अनेक ब्राह्मण-कुमार आते थे। इतनी संख्या में कि कभी-कभी तो यह समस्या उठ खड़ी होती थी कि उनका करें क्या? इस पर उन्होंने किसी भी विद्याभ्यास के लिये आये हुए को 'न' न कहने का निश्चय किया था। अतः वहाँ हमेशा बड़ी भीड़ रहा करती थी। भीड़ का कारण धौम मुनि का सुस्वभाव, उनकी पावनता और श्रेष्ठ विद्या थी। इसके अतिरिक्त उनके शिष्यों में अनंगपाल जैसे राजा भी थे, यह भी उनकी कीर्ति का एक कारण था। अब हमें इन्हीं धौम मुनि के आश्रम में जाना है।

ऊपर के वर्णनानुसार राजा अनंगपाल धौम मुनि के दर्शन करने और उनके विचार को जानने के लिये आये थे। उनके आने का समाचार सुनते ही धौम मुनि ने उन्हें बुला भेजा।

कुशल-प्रश्न होने के बाद राजा ने अपने राज्यत्याग और शेष जीवन तपश्चर्या में बिताने का निश्चित किया हुआ दिन कह सुनाया। धौम मुनि को यह सुन कर बड़ा सन्तोष हुआ। वे बोले—

"राजा अनंगपाल, तेरा यह निश्चय उचित समय पर ही हुआ। मैं इसकी राह देख रहा था।"

"महाराज, उचित समय क्यों कहते हैं? मेरे विचार के अनुसार तो बड़ी देर हो गई है। आपकी आज्ञानुसार तो मुझे कितने दिन पहले ही आ जाना चाहिये था।"

"राजा, तू ठीक कहता है, पर मेरे 'उचित समय पर' कहने का मतलब निराला है।"

"वह क्या महाराज?" राजा ने अत्यन्त उत्सुकता से पूछा।

"राजा, हमारे इस शांत आश्रम में बड़ी विघ्न-बाधा पहुँच रही है। इस विघ्न से हमारी रक्षा करने के लिये किसी क्षत्रिय-वीर की आवश्यकता है। अतः मैं कह रहा था कि तुम बड़े उचित समय पर आये। राजा, कोई एक कापालिक वैतरिणी के उत्तर तीर पर ऊपर की ओर आया है। वह वहाँ पर मंत्र-तंत्र की अनेक कुचेष्टायें करता है। इस कार्य में उसे कुछ यवनों की सहायता मिलती दिखाई देती है। उसके इस कार्य से हमें दुःख और विघ्न पहुँचता है, इसका निवारण तुम्हें करना पड़ेगा।"

"बस इतना ही? फिर राजत्याग करने के बाद इसका

निवारण करने की क्या आवश्यकता है ? जब मैं आ ही गया हूँ तो उस कापालिक और उसके वासस्थान को नष्ट किये बिना वापस नहीं जाऊँगा। बस, सब काम पूरा हुआ समझिए।"

—सातवां परिच्छेद—

विजयपाल का हिमालय-प्रयाण

राजा विजयपाल विमला देवी के स्वभाव से पूर्णतया परिचित थे, अतः उन्होंने पहले-पहल तो विमला और जयचन्द की खोज ही न की। पर इस तरह कितने दिन जाते ? किसी तरह चार दिन तो उन्होंने सोमेश्वर के घर बिताये। उन्हें इस बात का सन्तोष हुआ और हंसी आई कि विमला उनके ससुर के निश्चय में बाधा डालने को न थी। उन्होंने अपने लोगों को भी उसको खोजने की आज्ञा नहीं दी थी, क्योंकि वे यह समझते थे कि सोमेश्वर के घर न जाने के लिये ही वह कहीं छिपी बैठी है। अतः उन्होंने निश्चय किया कि न तो वे उसकी खोज ही करेंगे और न ही अपना जाना रोकेंगे। यदि उन्होंने खोजना जारी करवाया होता तो उनका जाना रुक जाता और शायद विमला के मन में भी यह आता कि उसने व्यर्थ अपने पति को जाने से रोका।

यह निश्चय सोमेश्वर के घर से वापस आने तक टिका रहा। उन्होंने सोचा कि जब विमला यह जानेगी कि राजा ने उसकी

खोज भी नहीं करवाई, तो स्वयं दौड़ी आयेगी। पर अब वापस आने पर भी विमला और जयचन्द को न देखकर उनसे चुपचाप न बैठा गया। संताप के कारण उसने कोई अनिष्ट कर्म तो नहीं कर डाला? ऐसा बार-बार उनके मन में आने लगा। पर अब खोज कहां और कैसे की जाय? द्वारपाल से उन्होंने अनेक प्रश्न किये; पर उसने पहले का ही उत्तर दुहरा दिया, "मध्यरात्रि के समय वे आकर जयचंद को ले गईं; अपने अंतःपुर में उनको जाते मैंने देखा—बाद का पता नहीं है। उन्होंने जाते समय मुझे कड़ी आज्ञा दी कि उनके जाने के एक घंटा पहले मैं किसी को उनके जाने की ख़बर न दूँ। इस लिये मैं पहले कुछ न बोला। मुझे विश्वास था कि जो सजा आप मुझे देंगे, उसकी अपेक्षा वे मुझे अपनी आज्ञा की अवहेलना करने पर हजार गुना अधिक सजा देंगी, इसीलिये मैं पहले चुप रहा, पर इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं मालूम है।" यह सुनकर विजयपाल को आश्चर्य हुआ। अपने अंतःपुर की प्रत्येक दासी से उन्होंने पूछताछ की। कोई कुछ भी न बता सकी। सारी कोठी, जिस-जिस गांव में महल बनवाया था, आस-पास जितने रिश्तेदार थे—सब का घर खोज डाला; परिणाम कुछ न निकला। अंत में राजा विजयपाल बड़े निराश हुये, क्योंकि वे अपने विचार से प्रत्येक स्थान में खोज करवा चुके थे। वे बड़े खिन्न हो गये। विमला और युवराज जयचन्द इस प्रकार ग़ायब हुये कि राज्य-भर में एक आदमी को भी ख़बर न हुई। राजा विजयपाल उदार-हृदय थे अतः बिना

कारण छल-प्रपंच की बुद्धि वे न समझ सकते थे।

राजा विजयपाल इस तरह खिन्न और निराश हो गये कि उन्हें कुछ सूझ ही न पड़ता था। एकाएक उनके मन में यह विचार आया कि वे चारों ओर यह बात फैलवा दें कि राजा विजयपाल दूसरे लड़के चामुण्डराय को गद्दी देकर तपस्या के लिये जा रहे हैं, तो संभव है कि विमला जहां कहीं भी छिपी हो प्रकट हो जाय, क्योंकि वह यह कभी न बर्दाश्त करेगी कि जयचंद के रहते हुये चामुण्डराय गद्दी पर बैठे। यह विचार आते ही राजगुरु और अन्य मन्त्रियों को बुलाकर उन्होंने अपना विचार प्रकट किया। यह सुनते ही सभी आश्चर्य-चकित हो गये। पर राजा ने किसी का कहना न सुना। उन्होंने अपने बहाने को पूरा करने के लिये यह ढिंढोरा पिटवाया कि शीघ्र ही मैं राज्य-भार छोड़ कर तपश्चार्या के निमित्त हिमालय चला जाऊंगा। जाने के पहले मैं हिमालय जाकर कोई अच्छा स्थान देख आता हूँ जहां अपना आश्रम बनाऊँगा। राजा का यह काम कितनों को पागलपन से पूर्ण लगा; पर कितने ही इस काम को स्वाभाविक समझने लगे। कुछ लोग पागलपन इसलिये कहते थे कि राजा की अवस्था अभी अधिक न थी, फिर वे राज-कार्य छोटे बालक और मंत्रियों पर छोड़कर जा रहे थे। दूसरे कहते थे कि आनन्द के दिनों में ही राजा की महारानी और पुत्र अदृश्य हो गये, इसीलिये राजा को संसार से वैराग्य हो गया है। पर राजा के मन की बात कोई न समझ सका। मंत्रि-मंडल ने राजा को अपनी राय

बतायी; पर राजा ने कहा कि "अब लोगों पर मेरा पूर्ण विश्वास है। अगर एकाएक मेरी मृत्यु हो जाय, तो आप लोग क्या करें ? ऐसे-ऐसे प्रश्न करके उन्होंने मंत्रियों को निरुत्तर कर दिया और कहा कि मेरा निश्चय पलट नहीं सकता। आप लोग अपनी तैयारी करें।" बेचारे क्या करते ? तैयारी करने लगे।

बालक चामुण्डराय यह जानता था कि मां और जयचन्द कहां गये हैं, यह बात पाठकों के ध्यान में होगी। परन्तु मां ने उसे बहुत धमकाया था कि अगर विजयपाल कुछ पूछें तो पहले-पहल कुछ मत बताना। बाद में किसी ने उससे कुछ पूछा ही नहीं, अतः वह कुछ न बोला। पर अब बड़े भाई जयचन्द को छोड़कर उसे गद्दी मिलेगी, यह उसे अच्छा न लगा। उसके मन में विचार आया कि उसे अपने भाई के सिंहासन पर नहीं बैठना चाहिये, अतः पिता के पास जाकर बोला—"पिताजी, आज तक मैंने मां के डर से यह नहीं बताया कि वह कहां गई हैं क्यों कि जब आप उसे वापस लाते तो वह मुझे कड़ी सजा देती। पर अब मैं बिना कहे नहीं रह सकता, क्योंकि जयचन्द का सिंहासन आप ने मुझे देने का विचार किया है। पिताजी, जयचन्द को ले जाते हुये मां ने कहा था—"चलो, तुम्हें अपने गुरु अघोरघंट कापालिक के पास हिमालय ले चलकर, पर्णकुटी में रहें। वह तुम्हें अस्त्र, शस्त्र, तंत्र-मंत्र सभी विद्यायें सिखाकर पूर्ण बना देंगे।" माँ उसे लेकर वहीं गई है। आप वहीं खोज करवाइये। पिताजी, माँ उसे ले गई, नहीं तो वह न जाता। मझे नहीं ले गई, नहीं तो मैं भी

गया होता। जैसा आपका मुझ पर प्रेम है वैसा ही उसका उस पर प्रेम है। अघोरघंट का आश्रम कहीं हिमालय में है।"

चामुण्डराय के मुंह से अघोरघंट का नाम सुनते ही राजा विजयपाल का मन उसके सम्बन्ध में विचार करने लगा। चामुण्डराय ने आगे क्या-क्या कहा, इसकी उन्हें ज़रा भी सुध न थी, इसलिये लड़का बड़बड़ाता चला गया। खैर, अघोरघंट का विचार करके राजा ने क्रुद्ध हो कहा—"क्या कहता है, वह जयचन्द को लेकर हिमालय में अघोरघंट के पास गई? तुझे यह बात पक्की तरह मालूम थी, फिर भी तूने आज तक नहीं बताया। अब तो मेरा निश्चय और पक्का हो गया है कि अगर जयचन्द अपनी माँ के साथ वापस भी आ जाय या खोजने पर मिल भी जाय, तो भी मैं उसे सिंहासन पर नहीं बैठाऊँगा। अब वह कापालिक का शिष्य हो गया है। कापालिकों के शिष्य क्रूरकर्मी होते हैं। क्रूरकर्मी पुत्र को मैं इस सिंहासन पर कभी न बैठने दूँगा। तूने, अच्छा हुआ, सब बात सच सच बता दी। अब भले ही वह स्वयं उसे लेकर आये, तब भी मेरा निश्चय पलटने का नहीं। जयचन्द इस सिंहासन पर नहीं बैठ सकता। मैं अब तपस्या की जगह की खोज में जाता हूँ।"

बाप की यह बात सुनकर चामुण्डराय खिन्न हो गया। पिता का यह विचार कि वे जयचन्द की खोज में न जाकर उसे ही सिंहासन देंगे, उसे अच्छा न लगा। वह छोटा लड़का कर ही क्या सकता था? इतना ही बोला—पिताजी, अगर आप मुझे सिंहासन

पर बैठा भी देंगे तो मैं भरत की तरह राम का राज्य करूँगा। जयचन्द भैया के वापस आने तक उनकी पादुका सिंहासन पर रखकर मैं राज्य चलाऊँगा। जिस क्षण वह वापस आयेंगे, मैं उन्हें सिंहासन पर बैठाऊँगा और उनकी आज्ञानुसार ही चलूँगा।

यह सुनकर राजा विजयपाल हँस कर बोले—"ठीक है, एक बार राज्याधिकार हाथ में आने पर जयचन्द तो क्या, मैं ही वापस आने पर राज्य मांगने लगूँ तो भी तू वापस न देगा, समझा?"

चामुण्डराय इस पर कुछ न बोला। राजा ने मंत्रिमंडल को बुलाकर अपना निश्चय पुनः दुहराया—"मैं दो चार महीने के लिये हिमालय-आश्रम के स्थान की खोज में जाता हूं। जहां राजा अनंगपाल गये हैं, उनके पास-पड़ोस में ही मैं भी आश्रम बनाऊँगा। तुम लोग अपना काम चलाते रहना। यह चामुण्डराय तुम्हारा राजा है, इसे ही मेरे स्थान पर समझ कर सब राज्य-कार्य यथायोग्य चलाते रहना।"

पत्नी और पुत्र के अदृश्य हो जाने से ही राजा को वैराग्य आ गया है, यह सोचकर मंत्री पुनः बोले—"आप ऐसा न करिये! अभी तपस्या करने जाने का विचार भी आपके योग्य नहीं है। आपके जाने पर और बाल राजा के सिंहासन पर बैठते ही शत्रुओं की बन आयेगी। इसके अतिरिक्त अगर कल ही महारानी विमला जयचन्द को लेकर वापस आवेंगी तो क्या होगा?" पर राजा ने एक न सुनी, और बोले—"मेरा निश्चय अन्तिम है। मैं जो

आज्ञा देता हूं उसका पालन करो। तुम्हें किसी प्रकार की बाधा न पड़ेगी।"

मंत्रिमंडल को इतनी आज्ञा देकर और केवल पांच आदमी साथ लेकर सबकी अनसुनी करके राजा विजयपाल ने हिमालय का रास्ता लिया। उनका पहला विचार अपने श्वसुर के आश्रम में जाने का था, और दूसरा था उस अघोरघंट कापालिक का पता लगाकर उसे सजा देने का। उन्होंने उस कापालिक की दुष्टतापूर्ण अनेक बातें सुन रखा थीं। आज तक उसने असंख्य नरबलि दी थीं। उसके शिष्यों की संख्या सारे आर्यावर्त की सामान्य जनता में तो फैली ही थी, राजघरानों में भी खूब थी, एसा उन्होंने सुन रखा था। परन्तु वह शिष्यशाखा स्वयं अपने घर में आजायगी, इसकी उन्हें कल्पना भी न थी। अपने पुत्र के मुँह से अचानक उसकी बात सुनकर राजा को बड़ा धक्का लगा। अपनी पत्नी और पुत्र उसके पास अस्त्र-शस्त्र, और तंत्र-मंत्र विद्या सीखने के लिये गये हैं, यह सुनकर उनके रोयें खड़े हो गये। अब अपना कर्त्तव्य उन्हें वहां से लाना ही है। पर यह बात बिल्कुल गुप्त रहनी चाहिये कि मेरी पत्नी और पुत्र ऐसे नीच के संसर्ग में हैं। अतः उन्होंने हिमालय जाने का अपना अभिप्राय प्रकटतया तपस्या के लिये स्थान की खोज करना ही घोषित किया। उन्होंने चारों ओर इसी बात को प्रसिद्ध करके अपनी परी योजना करनी चाही।

अघोरघंट ने हिमालय के लोगों को—तपस्या के लिए गये हुयें साधुओं को बड़ा कष्ट दिया है—यह बात सब जानते थे।

जिस तरह जंगली शेर हरिणी को देखते ही उस पर क्रूरता से आक्रमण कर मार डालता है, वैसे ही एकाध ब्राह्मण या क्षत्रियों के लड़कों के दिखने पर कापालिक उन्हें अपने पंजे में फँसा कर उनकी बलि चढ़ा देता था। अफ़वाह थी कि उसने कई तपस्वियों की कन्याओं को भी पकड़ मंगवाया था। विजयपाल के मन में अनेक बार यह विचार आया था कि उस कापालिक की खोज कर उसे मृत्युदंड दें, पर आज तक उनके इस विचार ने उग्ररूप न धारण किया था। आज उसे मारने का दृढ़ निश्चय करके ही वे हिमालय की ओर चले।

विजयपाल सर्वप्रथम राजा अनंगपाल के गुरु के आश्रम में पहुंचे। वहां उनकी भेंट अनंगपाल से हुई। अपने आते ही अपने जामात्र को भी आया देखकर अनंगपाल चकित हुए। उन्होंने झट पूछा—"आपके इतनी जल्दी आने की क्या आवश्यकता थी, मैं तो समझता था आप आनन्दपूर्वक......"

अनंगपाल का वाक्य पूरा होने के पहले ही विजयपाल बोले—"कैसा आनन्द और कैसा सुख ? चामुण्डराय को सिंहासन पर बैठाकर मैं भी वानप्रस्थाश्रम में आ रहा हूँ। पर इसके पहले उस दुष्ट-नीच अघोर कापालिक का नाश करके उसकी कर्मभूमि का मूलोच्छेद करने आया हूँ।"

कापालिक का नाम सुनते ही अनंगपाल का आश्चर्य दूना हो गया। वे एकदम विजयपाल से बोले—"क्या कहते हो ? वह दुष्ट कापालिक ? तुम्हारा और उसका क्या सम्बन्ध है ?"

"महाराज, मुझसे तो नहीं; आपसे ही है। आपकी कन्या—मेरी पत्नी .जयचन्द को लेकर उसके पास रह रही है। उस मध्यरात्रि को वह जयचन्द को लेकर उस दुष्ट कापालिक के पास ही गई होगी। उस रोज़ जब मुझे अजमेर आना हुआ तो मैंने यह सोचकर खोज नहीं करवाई कि वह मेरे अजमेर से लौटने पर वापस आ जायगी। मेरे अजमेर से लौटने पर भी जब वह वापस न आई तो मैंने उसके खोज निकालने की युक्ति सोची। मैंने मंत्रियों को बुलाकर अपने छोटे लड़के को गद्दी देने की और अपने तपस्या करने जाने की बात फैलादी। मैं सोचता था कि यह समाचार सुनकर जयचन्द को गद्दी दिलाने के निमित्त विमला कहीं भी हो, दौड़ आयेगी। परन्तु इस युक्ति का भी कोई परिणाम न निकला। 'जयचन्द को अलग करके पिताजी मुझे गद्दी पर बैठा देंगे' यह बात चामुण्डराय को ज़रा भी पसन्द न आई। वह एकदम मुझसे बोला—"पिताजी, आप ऐसा नहीं कर सकते। मां जयचन्द को लेकर हिमालय में अघोरघंट कापालिक के दर्शन के लिये गई और वहां पर जयचन्द को तंत्र-मंत्र विद्या, अस्त्र-विद्या, शस्त्र-विद्या की शिक्षा दी जावेगी।"

अनंगपाल इतनी देर तक सांस रोके सुन रहे थे। अब लंबी सांस खींचकर बोले—"वह ऐसी ही दुष्ट है। मैं जिसको जड़ मूल से नष्ट करने के लिये यहां ठहरा हूँ, उसी को नष्ट करने के लिये आप भी पधारे हैं, यह खुशी की बात है। पहले मुझे ऐसा लगता था कि यह काम भयंकर शेर के शिकार के समान है, पर

वास्तव में यह काम उससे भी कठिन है। कितना कठिन, यह शायद आपको अनुभव न होगा। शत्रु तो क़िले में रहते हैं, परन्तु यह दुष्ट अपने मंत्रों के दुर्ग में रहता है—उसकी कर्मभूमि का पता किसी को नहीं है! वह गरीब तपस्वी तपस्विनियों को बड़ा कष्ट देता है। रोज़ एकाध कुमार या कुमारी का प्राण लेता है। अब उनकी तपस्या निर्विघ्न रूप से कैसे चले? बेचारों के आश्रमों में नित्य रुदन हुआ करता है। आज चार रोज़ से मैं उसकी खोज में हूँ। हिमालय के इस प्रदेश में चारों ओर घूम आया पर उसके कार्यक्षेत्र का कहीं पता ही नहीं चलता है। मैं समझता था—उसे और उसके लोगों को पकड़ने में एक डेढ़ घंटा लगेगा पर आज इतने दिन हो गये, उसका नामोनिशान भी न मिला। अब हम एक से दो हो गये, यह अति उत्तम हुआ। क्या कहते हो? विमला उसके पास आई है? और जयचन्द को लेकर? वह नरपशु कहीं उन दोनों को बलि न दे दे, उससे कुछ भी असंभव नहीं। इन अघोरपंथी लोगों की मोह-विद्या कितनी भयंकर होती है! विमला उसको गुरु कहती है तो उसे उसका दर्शन कहाँ मिला? पर वह ऐसी ही बातों में हमेशा से निमग्न रहती है। उसने कापालिक का दर्शन किसी की गुप्त सहायता से किया होगा और उतने में ही उसने उस पर अपनी मोहिनी डाल दी होगी। कुछ भी हो, हमें उनका पता लगाकर उनको भिन्न भिन्न करना ही पड़ेगा।

★

—आठवां परिच्छेद—

अघोरघंट कापालिक

हिमालय जितना साधुओं का आश्रय-स्थान था, उतना ही दुर्जनों का भी। जैसे सूर्य सब पर समान प्रकाश डालता है, पृथ्वी सबको आश्रय देती है, वायु जिस तरह सज्जन और दुष्टों के लिये समान बहता है, अग्नि जैसे अच्छी बुरी सभी वस्तुओं को पवित्र करती है, यही हाल हिमालय का भी था। उसकी निर्जन गुफाओं में चाहे साधु जाकर सत्कार्य करे या दुष्ट दुष्कर्म करे, हिमालय दोनों को समान आश्रय देता है। उस पर देव-देवी रहते हैं, तो राक्षस-राक्षसियां भी; गंधर्व, किन्नर और अप्सरायें रहती हैं तो पिशाच, पिशाचिनी, शाकिनी और डाकिनी भी। अगर उस पर नर-नारायण, ऋषि तपस्या करते थे, तो रावण जैसे असुर भी। उस पर मृत्यु को हरने वाली वनस्पतियां हैं तो मृत्यु को लाने वाली भी। उस पर सिंह, बाघ जैसे हिंसक पशु हैं तो हिरण, शशक जैसे प्यारे व विनम्र पशु भी। सारांश यह कि पर्वतराज सज्जनों और दुष्टों का समान आश्रयदाता है। यह उपकारी है या अपकारी, इसका भेद-भाव वह नहीं करता।

जिसको जो भी कार्य सिद्ध करना होता था वह उसके लिये हिमालय का आश्रय लेकर उद्योग करता था। अगर धौम, याज्ञवल्क्यादि ऋषि ईश्वर-प्राप्ति के लिये तपश्चर्या करते थे, तो अघोरघंट, महोत्कटादि कापालिक दुष्ट कर्मों की सिद्धि करने

के लिये अपना उद्योग कर रहे थे। इस अघोरघंट का वर्तमान कथानक से बड़ा गहरा सम्बन्ध है अतः हम उसका चरित्र देखते चलते हैं।

उसका निवास स्थान हिमालय का अत्यन्त गहन भाग था, जो एक बड़े विकट व ऊँचे शिखर पर था। इस स्थान पर तमाल, शाल्मली और बिल्व आदि वृक्षों का बड़ा सघन वन था। यहां पर चलना इतना कठिन था कि कोई चार क़दम भी बिना ठोकर खाये नहीं चल सकता था। अंधकार तो इतना था कि ऐसी जगह में कोई किसी को अपनी आंखों के सामने भी मार डाल रहा हो, तो उसकी सहायता के लिये वीरों का भी वहाँ जाना असंभव था। इस हिमालय-शिखर का नाम चंडीकूट था।

इस चंडीकूट के बारे में लोगों की यह धारणा थी कि वहां के पशु-पक्षी भी भय से चलते-फिरते हैं। अपनी मर्यादा के बाहर न तो जाते और न उड़ते। चंडीकूट के पास नदी के प्रवाह का जल पीने से भ्रांति होती और पीने वाला पागल हो जाता। एक सीमा के अन्दर किसी वृक्ष की पत्ती तोड़ने से मूर्छा आ जाती। ऐसी ही कितनी भयप्रद धारणायें हिमालय-वासियों ने उस स्थान के बारे में बना रखी थीं और कितने ही लोगों की यह धारणा पक्की हो गयी थी कि इन सब का कारण अघोरघंट कापालिक है। अब तक कितने ही लोगों के छोटे बड़े लड़के, कुमार व कुमारिकायें उसकी भेंट हो चुकी थीं। बेचारे ग़रीब लोग यदि पास के नगरों में कोई चीज़ विक्रय के लिये ले जाते तो

अचानक गरुड़ पक्षी झपट कर उन चीज़ों को उड़ा ले जाता। गरुड़ के रूप में अघोरघंट कापालिक आता है, ऐसा लोगों का दृढ़ विश्वास था। कितनी ही बार तो छोटे बच्चों को भी गरुड़ झपटकर उठा ले जाता था। यही हाल था शिखरों पर तपस्या करने वाले ऋषि-मुनियों का। जब उनकी पूजा के लिये पुष्प-फलादि लाने के लिये कुमार-कुमारिकायें कहीं आस-पास जाते तो वे लौट कर न आते। इन कुमार-कुमारिकाओं के अदृश्य हो जाने का हाल भी बड़ा विचित्र हुआ करता था। हिमालय प्रदेश के सभी आश्रमों में बड़ा हाहाकार मच रहा था। हमने यहां सत्क्रिया के निमित्त आश्रम बनवाये, शांति से जीवन व्यतीत करने के लिये यहां तपस्या करने आये, उसमें भी यह नराधम बाधा पहुँचाता है। क्या किसी क्षत्रिय-राज का यह सामर्थ्य नहीं कि वह हमें इसके चंगुल से भय-मुक्त करे, ऐसा ही वहां के तपस्वी-गण सोचा करते थे। आज तक उन्होंने कितने ही क्षत्रिय राजाओं से रक्षा की मांग की। प्रत्येक ने अघोरघंट और उसकी मंडली को खोजकर उसे नष्ट करने के अनेक उपाय किये, पर सब व्यर्थ सिद्ध हुए। पहले तो कितनों ही को उसका निवास-स्थान ही मालूम न हो सका। कितने ही दिन तो चंडीकूट ढूँढ़ने में लग गये; पश्चात् इस बात की अड़चन सामने आई कि उस पर कैसे प्रयोग किये जाँय। किसी की तत्काल मृत्यु हुई, कोई पागल हो गया, कोई शेर के मुँह में जा पड़ा, कोई खोज करने के लिये किसी गुफा में पहुँचा तो बाहर ही न निकल पाया। ऐसी ही

बातें लोगों से सुनी जा रही थीं। इसमें तथ्य क्या था, भगवान् ही जाने। बहुतों के मन में यह विचार आया कि भस्मासुर दैत्य के समान ही यह भी कोई दैत्य है जिसने साधुओं को कष्ट देने के लिये ही जन्म लिया है। पर वास्तविक बात यह थी कि किसी को अघोरघंट कापालिक के बारे में निश्चित तथ्य मालूम नहीं थे। कोई कहता था कि चंडीकूट पर वह शेर के रूप में घूमता है, कोई कहता था कि वह गरुड़ के रूप में उड़ता है। उसी रूप में वह लोगों पर हमला करके उन्हें अपने स्थान पर ले जाकर चंडी की बलि चढ़ाता है। वह दुष्ट अपने असली रूप में केवल चंडी की आराधना भर करता है और बहुतों को तो यह भी विश्वास था कि उसे नष्ट करना मनुष्य के बस की बात नहीं, उसका संहार करने के लिये किसी देवता को ही जन्म लेना पड़ेगा।

इस अघोरघंट के शिष्य और शिष्याएँ असंख्य रूप में हिमालय-भर में घूमते फिरते थे, अतः कापालिक को अकेले होने का डर नहीं था। बहुतों ने सोचा कि उसका अत्याचार दिनों दिन बढ़ता ही जायगा, अतः वे हिमालय छोड़कर दूसरे प्रदेश में जाने की तैयारी करने लगे। जहाँ पर कुछ ऐसे विचार के लोग थे वहाँ कुछ ऐसे भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और संकरवर्ण के लोग थे जो बीच-बीच में उसके दर्शनों के लिये चंडीकूट जाकर उसके प्रभाव से अपनी कार्य-सिद्धि करना चाहते थे। लोगों की समझ में उसके शिष्यों की संख्या ऋषियों के शिष्यों से भी बहुत बढ़ चढ़ कर थी। ख़ैर, उसका यह बाह्य वर्णन करने की अपेक्षा हम

अब अपने मानस विमान की सहायता से उसके कार्य-क्षेत्र में जाकर उसे उसके वास्तविक रूप में देखने हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि चंडीकूट में अघोरघंट का राज्य था। चंडीकूट पर वृक्षों का इतना सघन वन था कि यदि उस प्रदेश में कुछ औषधि के काम में आने वाली वनस्पतियाँ न होतीं तो यह सब प्रदेश काल रूपी प्रदेश के समान ही होता। चंडीकूट से काफ़ी ऊपर की ओर एक पठार था जिसमें चन्दन, बिल्व, तमाल आदि के वृक्ष थे। पठार के एक ओर ऊंची पहाड़ी थी जिसमें पन्द्रह बीस गुफायें भी थीं। अघोरघंट हर अँष्टमी को गुफा से बाहर निकल कर चंडी का हवन करता था और नये पकड़ कर लाये हुए आदमियों और बालक-बालिकाओं की बलि चढ़ाता और पुनः गुफा के अन्दर जा बैठता। उसके शिष्य लोग गुरु के बताए हुए मंत्रों की सहायता से बलि के लिये मनुष्यों को फंसा कर लाते थे, ऐसा लोगों का विश्वास था।

पठार पर एक ओर वृक्षों को काटकर स्वच्छ जगह तैयार की गई थी। बीच में एक हवन-कुंड था जिसमें से हमेशा ज्वाला ऊपर उठती दिखाई देती थी। ऐसा लगता था कि मानों यह हवन-कुण्ड नहीं, बल्कि ज्वालामुखी पर्वत का एक भाग है जिसमें से ज्वाला निकल रही है। इस बड़े कुंड से दस हाथ की दूरी पर और भी छोटे-छोटे कुंड थे। इन कुण्डों में से भी ऐसी ही ज्वाला निकल रही थी। प्रत्येक कुण्ड के पास एक-एक आदमी बैठा था और किसी प्रकार की आहुति दे रहा था। मुँह से 'ओं ह्रीं क्लीं'

का जप चल रहा था। इस मंत्र के जप का उच्चारण बन्द करते ही सब स्वाहा कहकर कुण्ड में हवन की सामग्री किसी प्राणी के शरीर का कोई न कोई हिस्सा डाल रहे थे। हवन की सामग्री डालने के साथ ही बड़े ज़ोर का धुंआं ऊपर उठता और उसमें से एक विचित्र तरह की दुर्गन्ध निकलती थी। पर हवन करने वालों ने न तो नाक ही दबाई, न मुंह ही दूसरी ओर फेरा। मुख्य कुण्ड के पास कोई न था, यह स्पष्ट था कि वह गुरुजी का कुण्ड था।

इधर जब यह हवन चल रहा था तो एक गुफा में से एक तरुण सुन्दरी निकलती दिखाई दी। वह पठार में हवन कुण्ड के पास हवन करने के उद्देश्य से आई और बोली—"कपालेश्वर, गुरुजी, आप अब तक मुझ पर प्रसन्न नहीं हुये। मुझे जाने दो। मेरा लड़का रोज़ का यह हाल देखकर डर गया है। वह जल्दी यहाँ से चलने को कहता है। आज उनसे विनती करके मेरा छुटकारा करिये।"

सुन्दरी तरुणी की बात सुनकर हवन करने वाला न तो तिल भर हिला और न ही उसने दृष्टि ही फेरी। वह हवन करने, मंत्र का जप करने और स्वाहा के उच्चारण में ही निमग्न रहा।

थोड़ी देर में जप समाप्त हुआ तो वह उससे बोला—"विमला, गुरुजी ने एक बड़ा हवन करने का निश्चय किया है। इस हवन के योग्य तिथि आठ दिन में आयेगी। वह हवन करने के पश्चात् तेरे जयचन्द को कुछ मंत्र बताने वाले हैं। उस मन्त्र को जानने से युद्ध में कभी भी पराजय न होगी। तब तुम व्यर्थ जल्दबाज़ी

मत करो। तुम ही बताओ, तुम्हारे राज्य से मेरे ही आने से गुरुजी ने तुम्हें अपनी शिष्या बनाया न ? तब से कुछ भी तेरा अनिष्ट हुआ क्या ? जो-जो तेरा मन हुआ वही हुआ। तेरा पति भी तेरे कहने में है। जो तूने कहा, उससे एक तिल भी नहीं हटता है। तुझे कितने ऐश्वर्य प्राप्त हो गये। अब तू अपने जयचंद को लेकर सिद्धि प्राप्त करने आई; तूने विनती की, उन्होंने अनुमति दी, तो अब तुझे जाने की जल्दी लगी है !"

"जल्दबाजी का दूसरा कोई कारण नहीं है," विमला बोली—"जल्दबाज़ो केवल इसलिये है कि घरवाले क्या समझेंगे ? केवल चामुण्ड या मुझको छोड़कर किसी को यह बात नहीं मालूम कि मैं यहाँ आई हूँ। गुरु महाराज ने कृपा की है, यह बात तो मैंने अब तक नहीं सुनी। इसलिये कहती हूँ कि जल्दी निकल गई तो किसी को पता भी न चलेगा कि मैं यहाँ आई थी।"

"मालूम ही हो गया तो क्या हुआ ? क्या हमारा मार्ग निन्द्य है ?"

"मुझे निन्द्य लगता तो मैं दीक्षा ही क्यों लेती ? परन्तु मेरे पिता को इस मार्ग से घृणा है। यही बात मेरे घर में भी है। घृणा न होती तो वे स्वयं दीक्षा लेने यहां न आते ? उनको बड़ी घृणा है, इतनी कि········"

"इतनी घृणा है तो उसके लड़के को लेकर तू क्यों आई है ?"

"क्या कहते हैं आप ? वह लड़का क्या मेरा नहीं है ?

कपालेश्वर, मेरी बड़ी इच्छा है कि हज़ारों सहस्रों मुकुट-मंडित मस्तक उसके पांव पर अपना सिर रखें। वह मेरे पिता की गद्दी पर अधिकार करे और मेरी लोभी बहिन का लड़का उसका द्वारपाल बने। राजसभा में भी प्रवेश करने का अधिकार उसे न मिले·········"

"होगा! होगा! विमला, गुरु-कृपा से ऐसा ही होगा। धीरज रखो।"

नवां परिच्छेद

कपालेश्वर

इतना कहकर कपालेश्वर फिर हवन करने लगा। दूसरे कुण्डों पर बैठे हुए याजकों का हवन जारी था। उनकी दी हुई आहुति से चारों ओर दुर्गन्ध फैल गई थी। प्रत्येक कुंड के पास भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणियों का रक्त-मांस दिखाई दे रहा था। अलग-अलग कुण्ड के पास बैठे हुये याजक अलग-अलग प्रकार के प्राणियों के मांस का हवन दे रहे थे और भिन्न-भिन्न तरह के मंत्र जप रहे थे; केवल स्वाहा का उच्चारण और अग्नि में आहुति एक समय देते थे। जब सब एक साथ स्वाहा का उच्चारण करते तो उस पठार के आस-पास की सारी दिशा गुञ्जायमान हो जाती। कपालेश्वर पुनः मंत्र में लग गया; पर विमला स्त्रियोचित स्वाभाविकता से फिर बीच में बोली—"कपालेश्वर, मुझे कोई दूसरा भय नहीं है। अगर चामुण्ड ने बता दिया कि मैं यहाँ हूँ तो क्या

होगा ? वह कहेगा तो नहीं पर लड़का ही तो है; कौन जाने ? अगर वह यह बतला देगा तो··· ······"

इतनी देर तक कपालेश्वर का ध्यान हवन की ओर था, पर विमला की बात सुनकर हवनके लिये उठाये हुए हाड़-माँस को नीचे रख कर वह बोला—"विमले, वह कह भी देगा तो क्या होगा ? तेरा पति हमारी खोज में यहाँ आयेगा; और हमारा नाश करेगा, यही तेरा मतलब है न ? विमले, तुझे अपने पति के शौर्य का व्यर्थ अभिमान और भय है। आज तक ऐसे कितने ही कृष्णोपासक राजा गुरुजी की तपस्या भंग करने और जान से मार देने के लिये आये पर इस पठार पर पैर रखने की हिम्मत भी न कर सके। सुन, पगली, वह कैसी भैरवी है:—

काली करालवदना नयनत्रयधारिणी।
कपालचित्रखट्वांगधारिणी भीमनादिनी॥
करिचर्मपरिधाना शुष्कमांसातिभैरवा।
त्रैलोक्याग्रसमानास्या जिह्वाद्वितीयभीषणा॥
जयतुण्डा महोग्रा च भीमा भीमकपालिका।
अट्टाट्टहासिनी नित्या प्रगल्भ्या घोररुपिणी॥
अतिकाली महाकाली महानित्या महाभया।
विचित्रा चित्ररूपा च भीमनादनिनादिनी॥
महाघोरा शुष्कभीमा नरमुण्डविभूषिता।
रक्तमांसप्रिया चंडी रिपु कोटिभयप्रदा॥

ऐसी; काली तेरे पति-जैसे तुच्छ व्यक्ति से हमारे गुरु

महाराज की रक्षा न कर पायेगी; यह डर तुझे क्यों लग रहा है ? उसके चंगुल से हमेशा के लिये छुड़ाकर चंडी की इच्छा तुझे अपनी सेवा में लगाना है। तभी तुझे यहाँ आने की बुद्धि आई। चंडी ने जिसे अपनी सेविका बनाकर बुलाया उसका अवश्य कल्याण करेगी। विमले, तेरा पति जब तेरा यहां आना जानेगा तो तेरे और अपने पुत्र की खोज में दौड़ा आयेगा; वह आयेगा तो देवी उसका कंदन करके गुरुजी को उसके शव पर आसनारूढ़ करेगी। मुझे ऐसा लगता है कि अपने बड़े पर्व के लिये अच्छी बलि की सामग्री हाथ आयेगी। अगर ऐसा हुआ तो महाकाली की सेवा करने के लिये तुझे मुक्ति मिलेगी। जयचन्द सिंहासनारूढ़ होगा और हमारे पंथ को एक आधार-स्तम्भ मिलेगा। फिर उसके हाथ से·········"

यह सुनकर विमला का सारा शरीर थरथराने लगा। वह पागल-सी होकर अपने कथित हितैषी से बोली—"कपालेश्वर, तू यह क्या कहता है ? तू मेरे पिता और पति का अनिष्ट चाहता है। यह प्रसंग आने के पहले ही मैं यहाँ से चली जाऊँगी !"

"चली जायगी !" कपालेश्वर ने ज़रा रोष से कहा—"ऐसे कैसे चली जायगी। विमले, तेरा आना जितना सरल था, क्या जाना भी उतना ही सरल लगता है ? इस परिधि के आगे तूने क़दम उठाया तो क्या होगा, इसकी तुझे कल्पना है ? अन्दर आना सरल है; पर बाहर बिना गुरु की आज्ञा के कौन जा सकता है ? अन्दर भी वही आ सकता है जो उपासक है। अगर

उपासक से कोई लड़ेगा, तो उसकी मृत्यु निश्चित है और इस प्रकार गुरुजी के हवन के निमित्त सामग्री मौजूद है। अगर इस समय भी ऐसा ही हो तो तू क्या करेगी ? पुत्र को त्रैलोक्य-विजयी बनाने के लिये उसके चंडीद्वेषी पिता का शव हवन की अच्छी सामग्री होगी।

षट्कोणे पूजयेद्देवीं कालीं चंडां प्रचंडकाम्।
इच्छापूर्ती महभीमां शिवानीं वामवर्त्मगः ॥

ऐसी शास्त्र की आज्ञा है। जब तेरे यहां आने का प्रसंग आया है तो और क्या चाहिए ?"

यह बोलते हुए कपालेश्वर इतना उग्र दीखता था और उसकी आंखों में हिंसा की ऐसी लपट दिखाई देती थी कि विमला घबरा गई। उसका सारा शरीर थरथर कांपने लगा। राजा का शव लाकर अघोरपंथी लोग उसको हवन-सामग्री बनाते हैं ऐसा उसने सुना था; पर प्रत्यक्ष देखा न था। इसके एक दो बार पहले भी वह गुरु के दर्शनों के निमित्त आई थी; पर दर्शन करके ही चली गई थी। पर आज उसका मार्ग-दर्शक उसके पति और पिता को मारकर उनके शव को देवी की भेंट करना चाहता है, यह सुनते ही उस-जैसी स्त्री का भी बुरा हाल हो गया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? उसका रोम-रोम खड़ा हो गया, आंखों में पानी आगया, उसके मुंह से शब्द ही नहीं निकलते थे। उसे कपालेश्वर का वर्णित दृश्य आंखों के सामने दिखाई देने लगा और वह वहाँ आने पर पश्चात्ताप करने लगी।

उसकी ऐसी स्थिति देखकर उस क्रूर देवी-उपासक को संतोष हुआ, किन्तु उसे और भी डराने के लिये वह बोला—"विमले, जब यह बातें सुनकर ही तेरी ऐसी दशा हो गई तो तब इसे आंखों के सामने होता देखकर तेरी क्या दशा होगी ? तुझे अपने पुत्र को चक्रवर्ती राजा बनाना है न ? उसके पांवों पर भारतखँड के सारे राजाओं का मस्तक झुकना चाहिये न ? तेरे बाप के सिंहासन पर बैठने वाले तेरी बहिन के लड़के को उसका द्वारपाल बनाना है न ? अगर यह सब होना ही चाहिये, तो दूसरा मार्ग नहीं है। गुरुजी ने कल रात को ही मुझे बता दिया कि यह बातें होकर रहेंगी और उनको इससे बड़ा संतोष मिला। कारण, तेरी इच्छानुसार सब बातें होने का शुभ अवसर अपने आप आ रहा है।" जिस तरह काला सांप अपने शत्रु को डस कर फन उठाकर उसका असर देखता है, वैसे ही अपनी बातों का क्या परिणाम हुआ, इसके लिये वह विमला की ओर निहारने लगा।

अब तो वह बेचारी और भी घबरा गई। यह कपालेश्वर उसे कितना अच्छा लगता था, पर इतनी जल्दी वह ऐसा दुष्ट और कठोर कैसे हो गया ? पति को मारकर पुत्र को चक्रवर्ती सम्राट् का पद मिले, यह बात उसके मुंह से सुनकर उसे कुछ सूझ ही न पड़ा। बड़ी देर तक उसके मुँह से कोई बात ही न निकली; पर धैर्य धारण कर वह बोली—"लपालेश्वर, इस प्रकार का अनुष्ठान अगर गुरुजी करना चाहते हों, तो मुझे अपने पुत्र के लिये सार्वभौम राज्य नहीं चाहिये, और न कोई दूसरी वस्तु ही चाहिये।

मुझे उसे लेकर अपनी राजधानी लौट जाने दो। मैं फिर कभी गुरुजी से कुछ न मांगूगी। मुझे अपना सुहाग…… …"

"तेरा सुहागा ?" कपालेश्वर मुँह विचका कर बोला—"तेरे सौभाग्य—सोहाग पर आफ़त आने वाली है! तेरे पति का शरीर चंडी की सेवा में लगेगा; तू अखंड सुहागिन बनेगी, क्योंकि भवानी और गुरु की सेवा के लिये तू हमेशा ही यहां रहेगी। तेरी इच्छा के अनुसार जयचन्द को विजय प्राप्त होकर सार्वभौम सम्राट् का पद मिलेगा; तेरी बहिन का लड़का उसका दास बनेगा। चण्डी और गुरु की सेवा यह वास्तविक सोहाग है या उस चंडी-द्वेष्टा पति की सेवा का नाम सुहाग है ? मुझे लगता है कि अब तू विधवा है; फिर सधवा बनेगी !…… …"

यह सुनते ही वह सिहर गई। अगर उसे कपालेश्वर की विचित्र शक्ति का ज्ञान और भय न होता तो उसी समय उसे शेरनी के समान चीर डालती। अपने पिता और पति के घर वाली वह रणचण्डी विमला आज कपालेश्वर के सामने कांप रही थी ! उसे कुछ सूझ ही न पड़ा, आंखों के आगे अँधेरा छा गया। उसे ऐसा जँचा कि वहां से हट कर जितनी दूर हो सके भाग जाय। शेर के चंगुल में फँसी हरिणी अथवा गिद्ध के चँगुल में फँसी गौरैया जिस तरह उसकी ओर देखती है, ठीक ऐसे ही विमला कपालेश्वर की ओर देख रही थी। उसकी वह कातर मुद्रा देख कर वह पुष्ट तरुण कापालिक बड़ा प्रसन्न हुआ और उसकी ओर मर्मभेदी दृष्टि से देखने लगा। उसे उसका वह देखना सहन न

हुआ। उसकी समझ में न आया कि वह अपनी उस दृष्टि से उसे जलाकर राख कर देगा अथवा रूप बदल देगा, या कौन जाने क्या कर देगा? राजधानी में आकर मुझ से मीठे-मीठे शब्दों में बात कर नाना प्रकार के प्रलोभन देकर मंत्र-सिद्धि का प्रभाव बताकर इस पंथ की दीक्षा व वशीकरण आदि मंत्र-तंत्र बताने वाला यह वही कपालेश्वर है? उसे इस बात की शंका हुई और उसने सोचा कि मैं गुरुजी की आज्ञा लेकर घर जाऊँगी। परन्तु उस कपालेश्वर की अन्तर्भेदी दृष्टि से विमला का यह विचार छिपा न रह सका। वह उसे उसी समय बोला—"विमला, अब तुम कितनी ही कोशिश क्यों न करो, तेरा छुटकारा होने का नहीं। तू अब हमारे तपोवन में है। अगर गुरुजी महाराज ने तुझे जाने की आज्ञा भी दे दी, तो मैं न जाने दूँगा। तू चाहे सधवा रहे चाहे विधवा, तुझे प्रत्येक स्थिति में हम चंडी के उपासकों की सेवा करनी होगी। तेरी यह इच्छा मैं पूरी करूँगा—तेरे पुत्र को तेरे पति के सिंहासन पर बिठाऊँगा, पर तेरा पति चंडी की बलि चढ़ाया जायगा, और तू हमेशा हमारी सेवा करेगी। अभी तुझे उपासना के हमारे सभी साधन मालूम ही कहां हैं? तेरी जैसी नई अवस्था की और राजकुलवाली स्त्री हमें कहां मिलेगी? जब तू रूपवती, कुलवती, तरुणी होकर अपने-आप यहां आई है, तब क्या गुरुजी भी तुझे हाथ से जाने देंगे? अब तुझे हमारी दीक्षा लेनी पड़ेगी। अब तेरा छुटकारा नहीं। तेरी इच्छा के अनुसार हम जयचन्द को जाने देंगे, उसका कल्याण करेंगे, पर तू व्यर्थ

जाने की कोशिश न कर। सधवा होकर पति की सेवा करने की अपेक्षा महाकाली, उसके महामान्य उपासक अघोरघंट, मेरी और इतने तरुणों की सेवा से तुझे कितना फल मिलेगा, इसकी कल्पना तुझे नहीं है? तू चुपचाप रह, मैं तुझे उपासना के सभी मन्त्र बताऊँगा। उसे सुन लेने पर तेरी यहां से जाने की बुद्धि ही न रहेगी। अब और क्या कहूँ? तू मुझे दुष्ट, निष्ठुर या चाण्डाल न समझ। मैं वैसा नहीं हूँ। तू ही अपने हित की बात नहीं सोच रही। इसलिये अगर मैं कठोर बातें बोल रहा होऊँ तो बुरा मत मानना। तुझे लगता है कि गुरुजी छोड़ देंगे, पर यह तेरी भूल है। गुरुजी मुझ से विलग नहीं हैं, हम दोनों एक हैं। मैं जो कहूँगा उससे एक बाल-भर भी बाहर वे नहीं जा सकते। उनकी महिमा इतनी किसने बढ़ाई है? उनकी उपासना के निमित्त बलि, उनके स्वयं के हेतु कुमारी कन्याएं, उनके उपभोग में आनेवाली सभी वस्तुएं कौन जुटाता है? ये सब किसके यंत्र से चलते हैं। तू अब हमारी प्रधान शिष्या हो गई—तुझे धीरे-धीरे सभी बातें सीखनी चाहियें और·······”

परन्तु इतने में ही नीचे से एक दूसरा उपासक पठार पर आकर उससे बोला—“गांधार देश का उपासक मुंडकोटि आया है, उसके साथ एक और आदमी है। गुरुजी ने कहा है कि जप का काम पूरा न हुआ हो तो भी उनसे नीचे जाकर मिलो।”

“क्या मुंडकोटि आया है? और उसके साथ कोई और

आदमी है ? ठीक है; मैं उसीकी राह देखता था। वह आदमी कैसा दिखता है रे अष्टांगवक्र !"

"कैसा दिखता है !" अष्टांगवक्र उससे बोला—"उपासक तो नहीं दिखता—उलटा मुझे उसके यवन होने की शंका है।"

"यवन होने की शंका होती है ?" कपालेश्वर बड़े आश्चर्य, पर हृदय में संतोष से बोला—"बहुत अच्छा ! अपना कार्य जल्दी समाप्त होगा। खैर, रहने दे; मैं जाता हूँ।" ऐसा कहकर वह उठ खड़ा हुआ और पचीस-तीस क़दम चलने के बाद उसने अष्टांगवक्र को आंख का इशारा करके अपने पास बुलाया। विमला की ओर देखकर उसने उससे बड़ी धीमी आवाज़ में कुछ कहा। अष्टांगवक्र ने विमला की ओर दो-तीन बार चमत्कारिक दृष्टि से देखा। बाद में कपालेश्वर को देखकर सिर हिलाया और अनुमति दी। कपालेश्वर वहां से चला गया। विमला यह सब कुछ देखकर बड़ी उद्विग्न हुई। कपालेश्वर ने अष्टांगवक्र को उसके ऊपर बड़ी नज़र रखने को कहा है यह बात वह समझ गई और "हाय" कहकर उसने एक लम्बी सांस ली।

★

—दसवां परिच्छेद—

मुण्डकोटि और उसका साथी

अष्टांगवक्र ने जो बात कही उसे सुनकर कपालेश्वर को बड़ा संतोष हुआ। यह उसके चेहरे पर के भाव से स्पष्ट देखा जा सकता था। चलते-चलते वह अष्टांगवक्र से बोला—"अष्टांगवक्र,

तू मुंडकोटि के साथ आये हुए आदमी को यवन कहता है ? गांधार से यवन का आना संभव है; और मुंडकोटि गांधार से आया है, इसीलिये तो तूने उसे यह बात नहीं कही कि उसके साथ का आदमी यवन है, या और कोई कारण है ?"

"क्या ! और कोई कारण है ही नहीं ! अरे हम लोगों की तरह उसके शरीर पर कोई चिन्ह मौजूद नहीं है। न शिखा, न सूत्र, न वाणी ही हमारी-जैसी है। क्या यह पर्याप्त कारण नहीं है ?"

अष्टांगवक्र की बात सुनकर कपालेश्वर ने सिर हिलाया। यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि वह मन में कोई दूसरी बात ही सोच रहा था। अष्टांगवक्र ने बोलना बन्द किया, वह कपालेश्वर के साथ धीरे-धीरे चल रहा था। बीच-बीच में उसके मुंह की ओर निहारता चलता था।

इसी तरह काफ़ी देर तक चलने के बाद दोनों गुरु की गुफा के क़रीब आये। अष्टांगवक्र बाहर ही खड़ा रहा। कपालेश्वर अंदर चला गया।

अघोरघंट की यह गुफा बड़ी विस्तीर्ण थी। किसी-किसी का कहना था कि अघोरघंट के एक शिष्य ने, जो बड़ा सामर्थ्यवान राजा था, उसे यह गुफा बनवा दी थी।

किसी-किसी के विचार में यह गुफा बड़ी प्राचीन थी। अज्ञातवास में पाँडवों ने अपने निवास के लिये जो-जो गुफायें तैयार करायी थीं, उनमें से यह भी एक थी। तथ्य कुछ भी रहा

हो, यह बात निश्चित थी कि गुफ़ा बड़ी विस्तीर्ण थी। गुफ़ा के अन्दर अघोरघंट की उपास्य देवी—चँडी की भीषण मूर्ति थी। उसकी सजावट की ऐसी व्यवस्था की गई थी कि चंडी के शिष्य उसे देखकर ही देवी का महाप्रताप जान जायें। उस भीषण मूर्ति का वर्णन करने के लिये कितने ही भयानक और कठोर विशेषण प्रयुक्त किये जायँ तब भी उसके स्वरूप का यथायोग्य वर्णन नहीं कर सकते।

देवी की मूर्ति का सारा शरीर गहरा लाल था। या यूँ कहिये उस दिन मूर्ति को सचमुच ही रुधिर-स्नान कराया गया था, जो इतना भयानक दीखता था। उसकी आंखों के स्थान पर बड़े-बड़े माणिक जड़े हुये थे, जिनके बीच की सफेद पुतली बड़ी भयंकर लग रही थी। मूर्ति एकदम नंगी थी। कमर में छोटे-छोटे बच्चों की हत्या करके उनकी माला पहनाई गई थी। उनसे ताजा रक्त चू रहा था। गले में भी एक मुँडमाला थी। उनमें से भी रह रहकर रक्त चूता था, जो देवी की निकाली हुई जिह्वा पर आ टपकता था। देवी के पैरों-तले आदमियों के शव और हड्डियों के ढांचे पड़े थे। देवी बैठी न थी। शेर की पीठ पर सवार थी। एक हाथ में असुरों के शिर और दूसरे में त्रिशूल था। देवी के आगे बड़े-बड़े प्रचँड दीपक जल रहे थे। दीपक भी मनुष्यों के कपालों के बनाये, गए थे, जिनमें घृत जल रहा था। गुफा में सर्वत्र अँधेरा था केवल उसी स्थान पर प्रकाश का प्रबन्ध था जिसकी रोशनी में सभी चीजें और मनुष्य स्पष्ट दिखाई देते थे। देवी के अनुकूल

ही और सब वस्तुयें भी रक्त, हाड़-मांस से विभूषित थीं, जिनमें से एक विशेष दुर्गन्ध निकल रही थी। जिस तरह किसी हिंसक पशु की गुफा में जाने से दुर्गन्ध मिलती है वैसी ही यहां भी थी। हां, बीच-बीच में किसी एक विशेष प्रकार के हव्य पदार्थ की सुगन्ध भी आ जाती थी। गुफा में जगह-जगह हस्ति-चर्म, व्याघ्र-चर्म, मृगछाला आदि और तरह-तरह के पशुओं के दांत पड़े थे। इस गुफा का जितना भी वर्णन किया जाय, थोड़ा है—पूरा न होगा। अतः प्रसंगवश जहां-जहां जैसी परिस्थिति आयेगी, हम वैसा ही वर्णन भी करेंगे। सन्ध्या के समय कपालेश्वर के आने पर क्या हुआ, अभी हम इतना ही कहते हैं।

कपालेश्वर ने गुफा में प्रवेश कर चारों ओर ध्यान से देखा। बाहर के प्रकाश से गुफा में आने पर उसे कुछ सुझाई नहीं दे रहा था। या शायद उसका विचार यह था कि पहले दूर से ही देख ले कि मुण्डकोटि के साथ आया हुआ कौन व्यक्ति है, तब अन्दर जाय। लगभग १०—१५ मिनट तक वह अन्दर गौर से देखता रहा और जब उसे ऐसा लगा कि उसको जो देखना चाहिये था, देख लिया है, तब अन्दर प्रवेश किया।

अघोरघंट एक ऊँची चौकी पर व्याघ्र-चर्म पर बैठा था। उसने बाल का जूड़ा बांध रखा था और उस पर मुण्डमाला भी लगाई थी। उसके बाजुओं पर कितने ही तावीज़ बँधे थे। गले में माला किस वस्तु की थी, कहना कठिन ही है। उसकी दाढ़ी इतनी लम्बी थी कि उसने उसका उदर ढक रखा था और नीचे

व्याघ्र-चर्म पर लटक रही थी। फिर भी उसके गले में कुछ रुद्राक्ष, मणि, और अन्य वस्तुओं की मालायें देखी जा सकती थीं। उसने मस्तक पर कुमकुम का टीका लगाया था। कन्धों पर दुपट्टा ओढ़ रखा था। हाथों में नाना प्रकार की अँगूठियां थीं। उनमें से सभी यांत्रिक, तांत्रिक रही होंगी। मतलब यह कि शरीर के हर हिस्से पर, जहां भी कुछ बांधने की गुँजाइश थी, कोई न कोई चीज़ बँधी ही थी। उसके सामने पूजन का थाल रखा था। उसके पास ही उसकी हू-बहू नक़ल करने वाला एक उपासक बैठा था। दूसरी ओर एक दूसरा व्यक्ति था। उसे देखकर कपालेश्वर बोला—"मुँडकोटि, तुझे इतने दिन क्यों लगे? गुरुजी, यह मुँडकोटि दिन प्रतिदिन आलसी होता जा रहा है। इसे आप कोई दूसरा काम बताइये, नहीं तो व्यर्थ बैठे बैठे यह..... ...."

"कपालेश्वर!" मुँडकोटि उसकी बात काट कर बोला—"तुम बोलते हो सो ठीक है। पर मेरे काम में क्या-क्या अड़चनें थीं, इसकी भी कुछ कल्पना तुम्हें है? तुम्हें यहां बैठे-बैठे केवल हवन और पूजा करनी पड़ती है, दूसरा कुछ नहीं। मैं यहां कितने संकटों के बाद आ पाया हूँ, यह तुम यहाँ बैठे-बैठे नहीं जान सकते। गुरुजी महाराज, केवल आप मेरे कष्टों की कल्पना कर सकते हैं, क्योंकि आप त्रिकालज्ञ हैं।"

"ओ हो-हो! आप को बड़े-बड़े कष्टों का सामना करना पड़ता है—वह सब रहने दो। तुमने क्या किया, यह तो बतलाओ। कहीं हम लोग शांत होकर बैठ गये, तो हमारा नाश निश्चित है।

कुछ न कुछ व्यवस्था करनी चाहिये। तभी तुझे हमने इतना कष्ट दिया। बता क्या किया।"

"मैंने कुछ नहीं किया," मुँडकोटि उससे बोला—"कुछ भी इसलिये नहीं किया कि कुछ सम्भव न था। अगर सच पूछो तो बताऊँ। कपालेश्वर, हमें इन झगड़ों में नहीं पड़ना चाहिये। कुछ भी हो फिर............"

"मुंडकोटि तुमने यह बात अनेक बार कही है। तेरा बोलना निरर्थक है। जाने दे, पर यह तो बता तेरे साथ कौन है?"

"ये? मीरसाहब के चेले हैं और हमारे गुरुजी की सेवा के लिये आये हुए एक उपासक हैं। इनकी इच्छा है कि गुरु-चरणों की सेवा करके मंत्र-लाभ करें। ये गांधार देश के हैं। इनकी बड़ी इच्छा है कि अपना धर्म छोड़कर हमारा धर्म ग्रहण करें। पर इनके धर्म में भी जादू के इल्म कम नहीं हैं—इनके सहवास से मुझे इनकी भाषा भी थोड़ी-थोड़ी आने लगी है। पर इनके जादुओं की अपेक्षा अपने गुरुजी के मंत्र बड़े विलक्षण हैं। इनकी भाषा थोड़ी-बहुत आ जाने पर मैंने इन्हें अपने गुरुजी की मंत्र-विद्या के चमत्कारों का वर्णन किया। अतः ये गुरु-दर्शन के लिए मेरे साथ आये हैं, आप कृपा करके इन्हें अपने शिष्यों में शामिल कर लें। इससे इनका बड़ा उपकार होगा। आप इनकी परीक्षा ले सकते हैं।"

यह सुनकर कपालेश्वर अट्टहास करके बोला—"तूने तो कमाल कर दिया। तुझे किस काम के लिये क्या कहकर भेजा

था ! उसका कुछ पता ही नहीं, यह तीसरा बखेड़ा निकाला। तुझे क्या कहूँ ? खैर, इन्हें हमारी बोल-चाल आ जायगी तो आगे देखा जायगा। अभी यह उस बाहर वाली गुफा में रहें। गुरुजी महाराजा के मन में इन पर कृपा करने की इच्छा होगी तो बुलाकर सभी कुछ करेंगे। पर अभी इन्हें लेकर जाओ।"

यह सुनते ही मुंडकोटि अपने साथ के मनुष्य को लेकर बाहर निकला। जाते समय उस मनुष्य और कपालेश्वर का कोई इशारा हुआ।

उन दोनों के जाने के बाद कपालेश्वर अपने गुरुजी के निकट खिसक कर बोला—"यहाँ तक तो सब ठीक है, पर आगे हम क्या करेंगे ? आप कोई एक निश्चय तो करते नहीं। अगर हम लोग चुपचाप बैठ गये तो हमारे पीछे लगे हुये ये राजा लोग हमारा सत्यानाश करके ही छोड़ेंगे; चूकेंगे नहीं। आपका महाहवन भी होना चाहिये। हवन के लिए एक तो हाथ में आ ही गई है, उसे जाने नहीं देना है। अब जरूरत है एक कुमारी कन्या की, वह मैं ला दूँगा। पर आप पहले दृढ़ निश्चय तो कर लीजिये। कच्चापन होने से नाश हो जायगा। यह विमला अपने हाथ लगी है, उसे हाथ से नहीं जाने देना है। विजयपाल हम उपासकों का कितना बड़ा शत्रु है, जरा विचार तो करिये। अब वह इसकी खोज में आयेगा, और सेना ले आयेगा। वह बड़ा वीर है पर हमें युक्ति से उसका नाश करना है, तभी विमला हमारे हाथ में रहेगी। हमें राजस्थान में एक चंडी- शिष्य का राज्य तो स्थापित

करना ही है। जहाँ देखो वहीं कृष्ण, विष्णु, शिव की उपासना हो रही है! हम ऐसा क्यों होने दें? चंडी महादेवी आदि शक्ति भैरवी हैं, पर उनकी उपासना हमें यहाँ बस्ती से दूर निर्जन वन में करनी पड़ती है। अब मौक़ा आया है, इससे लाभ उठाना चाहिये। इस विमला के फेर में पड़कर आने वाले उसके पति का नाश करना ही चाहिये। विमला विधवा होकर हमारे हवन के लिये उपयोगी सिद्ध होगी। उसकी ही सहायता से हवन के लिये दूसरी राजकुमारी भी लानी चाहिये। यह मौक़ा हाथ से कदापि नहीं जाने देना है। वह जाने को उतावली हुई है। मैंने उसे स्पष्ट रूप से बता दिया है कि हमारा उद्देश्य क्या है? उसे भय दिखाया है। अष्टांगवक्र को उस पर दृष्टि रखने को कहा है। जो कुछ करना था, सब मैंने कर दिया है, केवल आप दृढ़ता से रहें—सब कुछ हमारी इच्छानुसार ही होगा········"

कपालेश्वर इस तरह लगातार बोल रहा था। वह कितना ही बोलता रहा, पर अघोरघंट के चेहरे पर एक मन्द मुस्कान के अतिरिक्त कोई भाव न दिखाई दिया। उस मन्द हास्य को देखकर ही पता चलता था कि उसने सब बातें सुनीं, नहीं तो इसमें भी सन्देह होता कि वह सुन रहा था या नहीं। उसने कोई प्रत्युत्तर न दिया। जिस तरह पागल हर बात को सुनकर मुस्कराता रहता है, ऐसा ही उसका भी हाल था।

कपालेश्वर यह सब जानता था। इसलिये वह उससे बोला—"विमला आपकी आज्ञा लेने आये तो उसे जाने न दें। जिस

तरह आप अभी केवल मन्द-मन्द मुस्कराते रहे, ऐसा ही मुस्करायें, बाक़ी उसका जो बन्दोबस्त करना होगा, मैं करूँगा।"

अघोरघंट कुछ बोला नहीं पर इस बार वह मुस्कराया नहीं।

—ग्यारहवाँ परिच्छेद—

विमला का निश्चय

कपालेश्वर के वहां से चले जाने पर विमला इस बड़ी उलझन में पड़ गई कि किस तरह से अपना छुटकारा करे। कपालेश्वर और गुरुजी एक हैं। कपालेश्वर के कहने को गुरु जी टाल नहीं सकते। फिर कपालेश्वर ने एक बार जो बात मुँह से निकाल दी, उसे बिना किये नहीं रहेगा; यह भी वह जानती थी। इस जाल में मैं आप ही आ पड़ी; अब छुटकारा तो किसी भी उपाय से करना ही होगा। परन्तु पुत्र के कल्याण का भी ध्यान था। यह पुत्र चंडी की कृपा और अघोरघंट के आशीर्वाद से ही पैदा हुआ था, यह उसका पूरा विश्वास था। इस लिये ही उसने उसका नाम जयचंडी रखा था; पर लोगों ने उसे बदल कर जयचंद बना दिया था। अघोरघट पर उस की श्रद्धा थी सही, पर अपने पति का नाश हो कर पुत्र को सिंहासन मिले, यह विचार उसके मन में कभी न आया था। कपालेश्वर ने वैसी बात कही है, यह याद आते ही उसके रोयें खड़े हो गये। वह पतिव्रता थी। वह पति को जली-कटी सुना

देती; उस से लड़-झगड़ भी लेती थी, पर पति का अनिष्ट नहीं देख सकती थी। उसे पति से बड़ा प्रेम था। उसके प्रति निष्ठा थी। अतः कपालेश्वर के उद्गार उसके शरीर में विष की भांति व्याप्त हो गये और वह वहां से निकल भागने की सोचने लगी। पर वह कपालेश्वर मुझे जाने न देगा, मार्ग में हजारों अड़चने डालेगा। कहीं हठ करके जाने लगी, तो मालूम नहीं क्या प्रसंग खड़ा करदे? विमला ऐसी ही बातें सोच रही थी। पर वह डर कर चुपचाप बैठने वाली स्त्री न थी। वह उपाय सोचने लगी। अष्टांगवक्र को इस पर दृष्टि रखने का इशारा कपालेश्वर ने किया है, यह वह समझ गई थी। पर संशय मिटाने के लिये वह उससे बोलीः—

"अष्टांगवक्र, तू यहां रह कर क्या कर रहा है? तुझे कभी कोई हवन-कर्म नहीं देते। व्यर्थ इधर से उधर और उधर से इधर दौड़ाते हैं। तू भी व्यर्थ क्यों हैरान होता है? मेरे साथ चलेगा तो तुझे किसी अच्छे पद पर रखूंगी। कुछ भी हो, मैं महारानी हूँ। तू मेरे परिवार में रहेगा तो तेरा कल्याण होगा। तू आज इतने वर्षों से यहां है, पर इस कपालेश्वर ने तुझे क्या सिद्धि दी? गुरुजी की तो दूसरी ही बात है। वे सब पर समान कृपा दृष्टि रखते हैं पर यह कपालेश्वर नित्य अड़ंगे लगाता है। तू स्वयं अपने बारे में विचार करके देख तो।"

अष्टांगवक्र यह सुन हँसकर बोला—"विमला देवी, आप जो कहती हैं, बिलकुल सच है। पर उपाय क्या है? कपालेश्वर

की आज्ञा के बिना यहां एक पत्ता भी नहीं हिलता। वह कह दे, तो दूसरी बात है। क्या मैं कपालेश्वर की बातें नहीं समझता? पर इस जंगल में आकर कपालेश्वर के वशीभूत होने के बाद वापस कौन जा सकता है? इस परिधि के अन्दर शेर भी कुछ हानि न करेगा, पर बाहर जाते ही फाड़ खायेगा। फिर व्यर्थ जान लेकर कहां भाग कर जाया जाय? यह सब किसका पराक्रम है? तुम कहोगी गुरुजी का; पर मैं कहूँगा कपालेश्वर का। उसके चँगुल से कोई नहीं छूट सकता। मैं नहीं छूट सकता, तुम नहीं छूट सकतीं। विमला देवी, आपको मैं भोला-भाला दीखता हूँ, पर बात ऐसी नहीं है। मैं सब समझता हूँ। मैं जान खपा कर इतना काम करता हूँ, पर मुझे कुछ मिलने का नहीं, यह मैं भी देखता हूँ। पर उपाय ही क्या है? अगर प्राणों का मोह है तो दिन ऐसे ही बिताने पड़ेंगे। कपालेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध एक भी क़दम उठा तो वह मेरे शरीर के हज़ारों—नहीं, नहीं, लाखों टुकड़े कर देगा। उसको इतनी सिद्धि प्राप्त हो गई है कि चाहे तो सारे संसार को जला कर राख कर दे। अब तुम यहां से निकल जाने की आशा ही छोड़ दो। अब वह तुम्हें मरने तक छुटकारा न देगा। आज मक्के के मीरसाहब का प्रधान शिष्य रोशनअली महामांत्रिक आया है। वह उसके आमंत्रण पर ही आया है। वह गांधार में शहाबुद्दीन ग़ौरी के पास रहता है। समय आने पर तुम्हें उसके हाथ सौंपकर गांधार भेजने में भी कपालेश्वर न चूकेगा। तुमने कपालेश्वर का असली रूप नहीं देखा है। तुम्हारे राज्य में

जाकर मीठी-मीठी बातें करके बोलने वाला कपालेश्वर और उसकी वाणी यहाँ नहीं है। यहाँ वह साक्षात् यमराज है। आज तक उसने रोशन अली को उससे मंत्र-तंत्र सीखने के बदले कितनी ही स्त्रियाँ दी हैं। तुझे इस बात की कल्पना भी है? ज़रा भी न होगी? तेरे विचार से वह यहाँ पहली ही बार आया है। पर नहीं, मैं केवल ऐसा बोला था मानों वह पहली ही बार आया हो। बात ऐसी नहीं है। उसकी और कपालेश्वर की मैत्री बहुत दिनों से है। यह रोशन अली भी बड़ा तांत्रिक है। कपालेश्वर भयंकर तांत्रिक है। कब किस पर क्या आफ़त ढा देगा, कौन कह सकता है? अब तो रोशन अली भी आगया है—अगर कपालेश्वर तुमसे बिगड़ गया, तो पता नहीं तुम्हारा क्या हाल करेगा! मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका। मुझ से उसकी आज्ञा के बिना एक क़दम भी न चला जायगा। जो-कुछ तुम्हें करना हो, उसकी हां में हां मिलाकर ही करो; नहीं तो कुछ भी होने-जाने का नहीं। तुम मेरी बात मानो। वह मुझे पागल समझता है; पथ-भ्रान्त समझता है। समझता है कि मैं उसका कोई इशारा ही नहीं समझता। मैं भी ऐसा ही नाट्य करता हूँ। उसे ज़रा भी नहीं पता चलने देता कि मुझमें सोचने-विचारने और समझने की शक्ति है।

विमला उसका बोलना और चातुरी से भरी बातें सुनकर चकित और स्तब्ध हो गई। उसने स्वप्न में भी यह न सोचा था कि अष्टाँगवक्र इतना चतुर और बुद्धिमान् होगा। फिर आज तक का

उसका व्यवहार भी ऐसा ही था। इसीलिये उसने उसे अपने राज्य में पहुंचकर उच्च पद देने का लोभ दिया था। पर उसकी बात सुनकर वह चतुरों की अपेक्षा भी चतुर मालूम हुआ। उसके मन का झूठा भ्रम निकल गया। उसकी यह बात सुनकर कि रोशनअली और कपालेश्वर में मित्रता है, कपालेश्वर उसे भेंट में स्त्रियां दिया करता है और अगर उससे अप्रसन्न हुआ तो उसे भी उसके सुपुर्द कर देने में न हिचकेगा, उसका चेहरा उतर गया। उसने सोचा कि पति और पिता से लड़कर यहां आने में उसने भयंकर भूल की। पर इस भूल का अब उपाय क्या है? कुछ उद्योग किये बिना तो छुटकारा मिल नहीं सकता। अतः वह स्तब्ध रहना छोड़कर बोली—"अष्टांगवक्र, तेरी कही हुई सभी बातें सच हैं। पर क्या हमें छुटकारा मिलने का प्रयत्न भी न करना चाहिये? क्या हाथ पर हाथ धरे बैठा रहना चाहिये? तू एकदम निराश मनुष्य की भांति बोल रहा है, कुछ हिम्मत तो रखनी चाहिये। कपालेश्वर अब अपने को ही सब कुछ समझ बैठा है। गुरुजी से भी स्पर्द्धा करता है। यह गुरु-द्रोह नहीं है क्या? बोल, यह गुरु-द्रोह नहीं तो और क्या है? गुरुजी उससे इतना डरते क्यों हैं?"

पर अष्टांगवक्र कुछ बोलता ही न था। यकायक भयभीत होकर वह शून्य दृष्टि से विमला की पीठ की ओर किसी पदार्थ अथवा व्यक्ति को देख रहा था। विमला की समझ में न आया कि वह किस की ओर देख रहा है, अतः उससे बोली—"यह क्या

पागलों की तरह उधर निहार रहा है ? मुझे लगता है कि उस कपालेश्वर से तू इतना डर गया है कि सारा संसार ही तुझे कपालेश्वर से पूर्ण नजर आता है। वह मेरे पीछे आगया मालूम होता है, क्यों ?"

अष्टांगवक्र ने इस प्रश्न का उत्तर न दिया—दिया तो कपालेश्वर ने; और वह कठोर वाणी और कपट हास्य-परिपूर्ण हँसी में इस प्रकार बोला—"विमलादेवी, ओ विमला देवी ! उसे मैं जल, स्थल, नभ— वन और पहाड़ में सर्वत्र दिखाई देता हूँ न ? अब तेरे ऊपर भी मैं वही कृपा करूँगा जिससे तुझे भी मैं सर्वत्र दिखाई दूँ, समझी। तेरी भी ऐसी ही इच्छा होगी। मेरा और तुम्हारा पुराना-सम्बन्ध है। ठीक है, तेरी इच्छा मैं पूर्ण करूँगा। आज ही, इसी घड़ी से। मूर्ख, तू समझती थी कि इस महामूर्ख को हाथ में करके तू शेर के मुँह से सहज ही निकल जायगी ! वाह ! क्या बुद्धि है ! सुन, अन्तिम बार सुन, अगर तू अपनी इच्छा से हमारी और चण्डी की तृप्ति करेगी तो ठीक; नहीं तो तुझ से बल पूर्वक यह कार्य करवाया जायेगा। तेरे पति को तेरे पास आने दे कर उसे मार कर महा-हवन करेंगे। और अगर तू हमारे हाथ से छूटने का प्रयत्न करेगी तो तुझे यवन तांत्रिक को दे दूँगा। फिर वह तेरी क्या-क्या दुर्गति करके किस की बलि देगा, मुझे भी नहीं मालूम। चतुर हो तो सीधे मार्ग पर आओ। भलाई-बुराई का विचार छोड़ो। मैं तुझे कब से समझा रहा हूँ, पर तेरी समझ पर पत्थर पड़ गये हैं। तू

समझती है कि मेरी आंखों में धूल झोंककर तू निकल जायगी; पर यह देख, मेरी आंखों को धोखा देनेवाली धूल सारे हिमालय प्रदेश में नहीं मिलेगी। मैंने तीन बार तुझे समझा दिया, अब और न समझाऊँगा। तू क्या सोच रही है—मैं जानता हूँ—वह तेरा भ्रममात्र है। बोल मेरी सब बातें स्वीकार करती है या नहीं? तू गुरुजी पर भरोसा मत कर। मेरे कहने से गुरुजी एक तिल भर भी आगे न जायंगे। अगर स्वयं उनके मन में भी तेरे जाने देने की इच्छा हो तो भी यह सम्भव नहीं है—फिर तेरी तो बात ही क्या है, अब और कितनी स्पष्टता से कहूँ?"

पहले तो विमला बिल्कुल घबरा गई। उसे यह कल्पना भी न थी कि इस तरह मेरे पीछे खड़ा होकर कपालेश्वर मेरी बातें सुन रहा है। इसके सिवा कपालेश्वर के इतने भयंकर स्वभाव से अभी तक वह परिचित न थी। "तुझे यवन के सुपुर्द कर दूंगा"—उसके यह शब्द उसे बड़ी ही निर्दयता और चांडालता से पूर्ण लगे। कपालेश्वर ने ही उसे सब्ज़-बाग़ दिखाये थे; मन्त्र की चाट लगाई थी। सब के अनजान में ही वह अघोरघंट की शिष्या बन गई और मौके-मौके पर मन्त्रसिद्धि प्राप्त करने की चेष्टा करने लगी। इस चेष्टा और मन्त्र की ज़रूरत तब और भी हुई जब उसे लगा कि हस्तिनापुर का सिंहासन उसके पुत्र के हाथ न लगेगा। इसके पहले उसे मन्त्रसिद्धि की आवश्यकता पुत्र होने और राजा का मन दूसरी स्त्रियों पर न जाने के लिये थी। पर इसके आगे उसकी आकांक्षा यह हुई कि जिस गद्दी पर बैठने के लिये कौरवों और

पांडवों में इतना घोर युद्ध हुआ था, वह मेरे पुत्र को मिले। अगर वह गद्दी हाथ न लगी तो मेरा और मेरे पुत्र का जन्म ही व्यर्थ है। पिता वह सिंहासन तो कमला के लड़के को देंगे; पर उसे वह पचाने न पायेगा। उसका पुत्र जयचन्द ही उस पर बैठकर धर्म के अनुसार शासन करे। उसके पैरों पर सारे भारतखण्ड के राजागण अपना मस्तक झुकायें। यह राजसूय यज्ञ करे। इस विलक्षण आकांक्षा ने उसके मन में घर कर लिया था। यह सब करने के लिये कपालेश्वर और उसके गुरु अघोरघंट से मंत्र-सीखना चाहिये। उसका पुत्र जयचन्द भी मंत्र-सिद्धि प्राप्त करे, इसी उद्देश्य से वह यहां तक आई थी, यह कई बार कहा जा चुका है। पर उसे कल्पना भी न थी कि ऐसे प्रसंग उठ खड़े होंगे और उसकी इच्छापूर्ति के लिये उसे इतनी महँगी क़ीमत देनी होगी। उसने सोचा था कि कपालेश्वर और अघोरघंट अगर अधिक से अधिक धन मांगेंगे तो वह भी वह देगी। पर कपालेश्वर ने आज तक उसे अपने हृदय के विचारों को ज़रा भी न जानने दिया था। वह आज इतना निष्ठुर और क्रूर हो गया था। अब विमला की आंखें खुल गईं। इससे पहले भी दो-एक बार कपालेश्वर ने उसे अपने हृदय की बातों की ओर इशारा किया था; पर उसने उन्हें समझा न था। इसके बाद उसने स्पष्ट रूप से भी दो-एक बार समझाया; पर उसने समझने की परवाह ही न की। पहले तो उसकी बातें उसे विनोदपूर्ण मालूम पड़ीं, पर बाद में एक-दो परिच्छेदों में वर्णित घटनाओं के अनुसार जब

उसने कठोर और स्पष्ट उक्ति का प्रयोग किया, तब उसके अन्तःकरण में विलक्षण प्रकाश पड़ा। अभी तक उसे सब मंत्र मालूम न थे। फिर भी वह समझती थी कि अघोरघंट गुरुजी और कपालेश्वर की उस पर कृपा है; सीख ही लेगी। पर आज कपालेश्वर की बातों से उसकी आंखें खुलीं। वह कुछ भी रही हो, थी बड़ी पतिव्रता। उसके पति को बलि देकर उसे वह विधवा कर रखेगा; इस बात के याद आते ही पुनः उसके शरीर का रोआं-रोआं खड़ा हो गया। 'मैं कितनी आशायें लेकर यहां आई; और इस प्रकार यह अवांछनीय कर्म किया। यदि मैं यहां से निकल भी न पाऊँ, तो भी कम से कम पति को सावधान जरूर कर दूँ कि वे यहां न आयें'—ऐसा उसने निश्चय किया। पर कपालेश्वर कह रहा था कि तेरे ही योग से और तेरे ही चक्कर में पड़कर तेरे पति को यहां बुलाऊँगा और उसकी बलि दूँगा। जब कपालेश्वर ने बार-बार इन्हीं बातों का उच्चारण किया तब तो विमला का हृदय फट-सा गया। कपालेश्वर वास्तव में इतना रौद्र, इतना क्रूर, इतना बीभत्स हो सकता है, इसकी उसे कल्पना तक न थी। उसे यह स्पष्ट जान पड़ने लगा, कि वह छुटकारा पाये; पर उसे यह प्रयत्न करना चाहिये कि उसका पति वहां न आये।

पर यह युक्ति कैसे की जाय, उसकी समझ में न आया। कपालेश्वर अब उसकी ओर सशंकित हो गया था, अतः सावधान था। उसको फँसाना असम्भव है। उसका मन भी पलट देना

सम्भव नहीं। उसे अब इस बात का अनुभव हो चुका था; पर अष्टांगवक्र की बात से उस पर विलक्षण प्रकाश पड़ा।

अन्त में वह अपने-आप बोली—स्त्रियों की कुटिलता का बहुतों ने वर्णन किया है। उन्हें बड़ी कुटिला, अत्यंत छलपूर्ण और घातिनी कहा जाता है, पर यहां तो यह कपालेश्वर ही कुटिल, कपटी और घातकी है। इसे परास्त करने का कौशल क्या मुझ में है? नहीं। पर चुप बैठने से तो मैं अपने हाथों से पति-हत्या करूँगी। जहां तक होगा मैं उन्हें बचाने की हर कोशिश करूँगी। अगर प्रसंग आने पर इसने मेरी बलि दी, चांडाल से मुझे मरवा डाला अथवा यवन के हाथ सौंप दिया तो मैं पहले ही आत्म-घात करूँगी। अगर प्रत्यक्ष पुत्र की हत्या करनी पड़े तो वह भी करूँगी पर पति-हत्या न होने दूँगी। मैं कुटिला नहीं हूँ, कपटी नहीं हूं, पति मेरा देवता है। उनकी रक्षा के लिये जो होगा करूँगी, पर इस चांडाल की इच्छा-पूर्ति कभी न होने दूँगी।

जब कपालेश्वर उसे धमका रहा था तब उसके मन में यही विचार द्वन्द मचा रहे थे। कपालेश्वर जितने निश्चय से बोल रहा था, उतने ही निश्चय से उसका ऊपर कहा हुआ निश्चय भी दृढ़तर हो रहा था। कपालेश्वर को उसका चेहरा दिखाई दे रहा था, हृदय नहीं; यह अच्छा ही हुआ। वह उसके वश में थी, अतः उसके चेहरे पर केवल यम का चिह्न दिखाई दिया; विचार की दृढ़ता नहीं। अन्त में वह बोला—"इस प्रकार मूर्खवत मेरी ओर क्यों देख रही है? आज तक तू मुझे कापालिक समझती

थी; पर अब शेर जान। कुछ भी हो, अब तो तुझे और तेरे पति को अच्छा नाच नचाऊँगा।"

ऐसा कहकर उसे भयभीत करने के हेतु उसने बड़े आनन्द से अष्टांगवक्र की ओर देखकर गर्दभ-हास्य किया। वह गर्दभ-हास्य दुष्टता के आशय से ओत-प्रोत था। विमला डरी तो सही; पर उसके निश्चय ने उसे धीरज दिया। कपालेश्वर का कौतुक बढ़ाने के लिये उसने कहा—"कपालेश्वर, मैं तेरे पैर पड़ूँगी; तू जो मान लेगा तो ठीक, नहीं तो नहीं सही। जो-कुछ तू मुझ से भोग करायेगा वह सहन ही करना पड़ेगा। तेरे सामने तो बड़ों-बड़ों का कुछ वश नहीं चलता तो मेरा क्या चलेगा?

"वाह! तुझे अब यह पता चला है? पर दुष्टे, तुझे कपट की खान ही नहीं तो और क्या कहूँ? मुझे यहां न देखने के पहले तू अष्टांगवक्र से क्या कह रही थी? उसका मन अपने वश में करने के लिये क्या खेल खेल रही थी? क्या अब तक की मेरी तपस्या, बलि और चँडी की एकनिष्ठ सेवा व्यर्थ ही जायेगी? क्या मेरी समझ में इतना भी न आयेगा कि मेरी पीठ-पीछे कौन क्या कह रहा है? दुष्टे, मैं यहां बैठे-बैठे पांच सौ योजन तक की घटनाओं की जानकारी करता रहता हूं, यह क्या है? तुझे यह बात मालूम न हो सो नहीं; पर तेरी श्रद्धा अब मुझ पर है ही नहीं। तुझे ऐसा लगता है कि गुरु अघोरघंट दिखाई पड़ गये तो अब इस भिखारी कपालेश्वर का क्या मूल्य? पर याद रख........"

इतना कहकर उसने पुनः विकट अट्टहास किया और वह कुछ

और बोले इसके पहले ही एक आदमी आकर बोला—'मालिनी-तट के प्रदेश से मुण्डमालेश्वर आये हैं—उन्होंने आप को इसी समय गुरु-महाराज के पास बुलाया है।"

'हैं, इतनी जल्दी आया है?' कपालेश्वर ने जरा उत्कंठा से पूछा, पर वह बेचारा क्या जवाब देता?

तब कपालेश्वर विमला की ओर क्रूर दृष्टि से देखकर बोला—"दुष्टे, तेरे ही पति अथवा पिता की कोई बात कहने आया होगा। तेरा यहां आना उनसे छिपा नहीं है। उन्हें मालूम हो गया होगा और वे अपनी सेना लेकर हमारे प्रदेश पर चढ़ आये होंगे; दूसरी ऐसी कोई बात ही नहीं है जिसके लिये मुँडमालेश्वर दौड़ा आये। इसने सारे प्रदेश पर अपने आदमियों का जाल बिछा रखा है, केवल यह जानने के लिये कि वे दुष्ट कब आते हैं, यह खबर हमें पहले ही मिल जाय। हमारा नाश चाहने वाले देवी का नाश चाहते हैं, अतः वे बच कर नहीं जा सकते। यह बात नहीं है कि अपनी अन्तर्दृष्टि से हम दूरी पर ही उनका नाश न कर सकते हों; पर हम तो यही चाहते हैं कि वे यहां आ जायँ! उनका गला हमें यथाविधि काटकर उसे श्री चँडी के गले में शोभायमान करना है। विमले, एक ओर तेरे पति का सिर, दूसरी ओर तेरी बहिन के पति का सिर और बीच में तेरे पिता का सिर! सच कहता हूं तुझे उस समय श्रीचंडी की पूजा करने में बड़ा पुण्य मिलेगा! वाह!"

इस वाणी से दीन विमला की क्या दशा हुई होगी, वर्णन कर सकना सम्भव नहीं है। अपने सामने बोलने वाला उसे आदमी नहीं, राक्षस मालूम पड़ा और वह थर-थर

—बारहवां परिच्छेद—

रोशनअली

इधर विमला और कपालेश्वर एक दूसरे की योजना विफल करने के बारे में निश्चय कर रहे थे; कपालेश्वर अपनी दुष्टतापूर्ण बातों से विमला को डरा रहा था, उधर दो व्यक्तियों की किसी दूसरी ही बात के बारे में चर्चा हो रही थी । इसका समझना हमारे कथानक के लिये उपयोगी है, अतः हम दोनों बातें सुनने और उनके बारे में अधिक परिचय प्राप्त करने उनके पास चलते हैं । जिस गुफा में मुँडकोटि रोशनअली को ले गया था दोनों वहीं बैठे म्लेच्छ भाषा में बोल रहे थे, जिसका सारांश यह है:—

मुँडकोटि—"देखा, हमारे गुरुजी को । इनकी सिद्धि बड़ी भारी है । आप भी अपने को महान् मांत्रिक कहते हैं; पर इनके सामने आपके मंत्र क्या चलेंगे ?"

रोशनअली हँस कर बोला—"तुममें अपने गुरु का अभिमान होना कुदरती है । हमें अपने मीरसाहब का अभिमान है । पर अभिमान छोड़ कर कहा जाय तो यह सच है कि आपके गुरुजी की तैयारी अधिक है । पर मुँडकोटि, अगर इस तैयारी का हमें कुछ लाभ न हुआ तो इसका उपयोग ही क्या ? मैं आपके साथ व्यर्थ नहीं आया । आशा से आया हूँ तो हमारी कुछ मदद करोगे ही । अगर आप मेरी मदद करेंगे तभी मेरे यहां तक आने का श्रम सफल होगा । मुँडकोटि, तुममें और मुझमें फ़र्क ही क्या है !

फिर मुझे अपने उपासना-मार्ग की दीक्षा क्यों नहीं देते ? मुझे भी शिष्य बना लो। मैं तुम्हारी विधि के अनुसार ही सब कुछ करूँगा। परमेश्वर की कृपा से मुझे संस्कृत भाषा आती है, आप लोगों की प्राकृत भाषा भी। मुझे ऐसी सिद्धि होगी कि मैं किसी हिन्दू राजा के आश्रम में रहूँगा। यवनों में शहाबुद्दीन को इस विद्या से बड़ा द्वेष है। वह कहता है कि ये सब शैतान के पास जाने के मार्ग हैं। अल्लाह जो सबका परवरदिगार है, ऐसी बातें ना-पसन्द करता है। पैगम्बर भी ऐसे उपायों को काम में लाने वालों को अल्लाह का दुश्मन कह गये हैं। तब मेरी इच्छा तृप्त कैसे होगी ? बड़ी मुश्कलों से तो मैं यहां तक आ सका हूँ। हमारे यहां के मौलवियों और क़ाज़ियों को अगर ज़रा भी ख़बर हो जाती कि मैं इस मार्ग का उपासक हूँ तो तुरन्त मुझे बादशाह के पास ले जाते। इसीलिये तो मैं यहाँ आया हूँ। मुंडकोटि, तू मेरी इतनी इच्छा की पूर्ति कर। अघोरघंट से कह। कपालेश्वर को सब हाल बता दे। इतना तो किसी तरह कर…………”

पता नहीं यह मुसलमान मांत्रिक कितनी देर तक ऐसा बकता रहेगा, यह सोचकर वह बीच में ही बोला—“रोशनअली, आप ठीक कह रहे हैं। पर हमारे गुरुजी वैदिक धर्मानुयायी हैं। वे तेरे-जैसे शिखा-सूत्र-विहीन को अपनी तपस्या में कैसे लेंगे ?”

“इसमें क्या हुआ ? आप में और मुझ में फर्क ही क्या है ? हमारे और आपके काम में क्या फ़र्क है ? श्मशान में जाकर लाशों को लाकर देवी को अर्पण करना क्या हमारे धर्म में नहीं हो

सकता ? तुममें प्राणी-हत्या के विरुद्ध कितना आन्दोलन चल रहा है ? पागल, मेरे लिये कुछ कर, नहीं तो मैं स्वयं कपालेश्वर से मिलकर कोई मार्ग निकालूंगा।"

मुँडकोटि यह सुन हँसकर बोला—"रोशनअली साहब, जो बात आप कह रहे हैं क्या वह सम्भव है ? आप क्या समझते हैं। हमारे गुरु या कपालेश्वर क्या आपको चंडी के सामने जाने देंगे ?"

मुण्डकोटि यह बात दिल से कह रहा था अथवा ऊपरी तौर से, समझना कठिन है। मुण्डकोटि रोशनअली की ओर देखकर स्मित-हास्य कर रहा था। रोशनअली का ध्यान उसकी इस बात की ओर था या नहीं, यह भी कह सकना मुश्किल था। उसके अपने चेहरे पर कोई भावना न थी। वह मुण्डकोटि से बोला—"तुम्हारे बोलने का अर्थ ही मेरी समझ में नहीं आता। तभी जब कपालेश्वर मुझे तुम्हारे गुरु के पास ले गया था, तब क्या देवी की मूर्ति ढकी थी ? अरे बाबा, तुम्हें उससे क्या मतलब है कि मैं कौन हूं ? मुझे अपनी विद्या दो, मुझ से अपने लिये विद्या लो। फिर हर एक की विद्या में जो कमी होगी पूरी हो जायगी। वेद और कुरान क्या एक नहीं हैं ? मैं तुम्हारे पास आया हूं। अगर तुम इसी तरह मुझे दुत्कारोगे............"

"छिः छिः, यह आप क्या कहते हैं ? आपको यहां तक केवल इसीलिये लाया हूं ? कपालेश्वर आपकी इच्छानुसार सभी कुछ करेंगे। तुम्हें सब बतायेंगे। मैं क्या आपसे व्यर्थ ही बातें कर रहा था ?"

"आपकी विद्या हमें चाहिये तभी तो हम आपको इतने आग्रह से बुलाकर लाये हैं। पर अब आगे क्या है ?"

"आगे क्या ? आप कहेंगे या मैं ?"

मुण्डकोटि ने ज़रा विचार करने की मुद्रा से कहा—"कपालेश्वर से कोई मदद मिलेगी ?"

"मैं आपकी बात का मतलब नहीं समझ सका।"

"अरे साहब, यह न समझिये कि मैं गुप्त इशारा नहीं समझता। कपालेश्वर ने मुझे सब कुछ बता दिया है। प्रत्येक काम विश्वास पर होता है। अगर मैं उसका विश्वासपात्र न होता तो आपको यहां तक कैसे लाता ? जो बात उसे पसन्द न हो, जिसकी वह आज्ञा न दे, उसे करने का कलेजा किसका है ? मैं उसका बड़ा विश्वासपात्र हूं। पर मुझे यह नहीं दिखाना है कि मैं उसका विश्वासपात्र हूं। उसने हमारे गुरुजी के पास से बाहर आते हुए आंख पीछे कर जो इशारा किया क्या वह आप समझते हैं ? मैं वह नहीं समझ सका—पर उसका काम होगा कि नहीं; कहो ? अगर कपालेश्वर को एक बार राज्य मिल गया, तो उसमें हम सबका कल्याण होगा। इसलिये हमारी सब की यही उत्कंठा है कि वह काम बन जाय। बोलिये बादशाह········"

यह सब कहते हुए मुण्डकोटि बड़े ग़ौर से रोशनअली के चेहरे के भाव पढ़ने की कोशिश कर रहा था और रोशनअली मुंडकोटि के चेहरे पर से उसके हृदय की बात जानने की कोशिश कर रहा था। ऊपर के वाक्य को काट कर रोशनअली बोला—

"अरे बाबा, कुछ बोने पर ही उगता है। देने पर ही मिलता भी है। जब कुछ बोओगे ही नहीं, तो वापस क्या मिलेगा?"

यह सुनकर मुण्डकोटि के चेहरे पर सन्तोष की कुछ झलक आई; पर तत्काल ही उसने ऐसा चेहरा बना लिया मानों कुछ समझता ही न हो।

उसने जवाब दिया, "आप ठीक कहते हैं। परन्तु आप ही विचार कीजिये कि क्या कपालेश्वर में कुछ देने की शक्ति ही नहीं है? वह आपको भी देना कबूल करेगा तभी तो हम उसके पास आये हैं। उसने जो देना कबूल किया है, आप समझते हैं कि मैं नहीं जानता? मैं उसका ख़ास विश्वासपात्र हूं। इस बारे में आप ज़रा भी शंका न करें। न वह दिखाना चाहता है कि मैं उसका विश्वासपात्र हूं और न मैं ही। बल्कि उल्टे दूसरों को दिखाने के लिए हम ऊपरी तौर पर एक दूसरे का विरोध भी कर देते हैं। क्या किया जाय, यहां के लोग ही ऐसे हैं। अतः आप बिना किसी आनाकानी के मुझसे सभी बातें साफ तौर पर कह दें।"

रोशनअली कुछ देर सोचकर बोला—"जिस तरह कपालेश्वर ने सब कुछ मान लिया है वैसे ही तुम भी मान लोगे? जो कुछ मैंने कपालेश्वर को देने का वादा किया है, तुम्हें भी दूंगा। मुझे लगता है तुम हमारे काम में उपयोगी सिद्ध होगे। पर याद रखो, जिस बात का तुम वचन दोगे उससे रत्ती भर भी हिलने-डुलने न पाओगे। कपालेश्वर का और मेरा ऐसा ही वादा है। पर कुछ भी हो, तुम उससे भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगे, यह मेरा दृढ़

विश्वास है। पर हम उससे बाहर नहीं जायंगे, क्योंकि वह पहला व्यक्ति है।"

इतना कहकर वह मुण्डकोटि की ओर देखने लगा।

मुण्डकोटि विचार में पड़ गया। अन्त में उससे बोला—"रोशनअली साहब, आप क्या कहते हैं, मेरी समझ में ही नहीं आता। वह और मैं—कपालेश्वर और मैं केवल एक शरीर से दो हैं, पर हृदय से एक ही हैं। हमारे भीतर का भेद दूसरा कोई नहीं समझ सकता। दूसरों को दिखाने के लिए हम एक दूसरे का विरोध भी कर देते हैं, पर हृदय से एक ही रहते हैं। तब मुझसे एक, और उससे दूसरी बातें मत कहिये। मुझसे जो भी आप कहेंगे वह जान जायेगा और उससे जो कहेंगे वह मैं जान लूँगा। मैं उससे अधिक उपयोगी हूँ, चतुर हूँ, ऐसी बात न कहिये। हम दोनों एक हैं। मुझसे जो भी आपने कहा मानो उससे भी कह दिया। बाहर की दिखावट पर मत जाइये।"

इतना कहकर मुण्डकोटि ने अपनी निगाह उसके चेहरे पर जमा दी और उसका असर देखने लगा।

रोशनअली बड़े फेर में पड़ा दिखाई दिया। परन्तु जल्द ही उस फेर से बाहर पड़कर वह बोला—

"जैसे उसे एक प्रांत देने का वचन दिया है वैसे ही तुझे भी दूँगा।"

मुंडकोटि उसका यह बोलना सुनकर निराश सा हो गया। पर उसने यह सोचकर कि मैं निराश दिखाई दूँगा तो सारा

काम बिगड़ जायेगा, फिर कहा--"जो प्रांत देना क़बूल किया है वह है अजमेर प्रांत। अजमेर राज्य आप उसे ही दीजिये। उसने मुझसे सभी कुछ कह दिया है। अगर मुझे भी प्रांत देने को कहते हैं तो उसे मैं यह बताये बिना नहीं रहूँगा।"

पर इतने में ही बाहर से किसी के रोते रोते चलने की आवाज़ आई। दोनों यह देखने के लिये कि कौन है, बाहर आये। देखते हैं तो सामने से दो जँगली आ रहे हैं और उनके आगे एक सुन्दर तरुणी रोती-रोती चल रही है। स्त्री के आगे-आगे अष्टांगवक्र चल रहा था। मुण्डकोटि ने उसकी ओर देखकर आश्चर्य से आंखें विस्फारित कर दीं। थोड़ी ही देर में स्त्री उनके क़रीब से आगे चली गई। रोशनअली ने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से उसका अवलोकन किया और उन लोगों के जाने के बाद मुण्डकोटि से पूछा—"यह तरुणी कौन है? क्या बात है?" मुण्डकोटि ने कहा, "उसे मालूम नहीं है कि स्त्री कौन है, पर लाई गई होगी महा-हवन में बलि के लिए ही। किन्तु उस सुन्दर तरुणी का परिचय जानने की उत्कंठा उसके हृदय में भी हुई और उसने अष्टांगवक्र को आवाज़ देकर बुलाया तो उसने कहा कि कपालेश्वर का काम करके आता हूँ।"

इधर से दोनों आश्चर्य-चकित होकर उस तरुणी की ओर देखते खड़े रहे। थोड़ी ही देर के बाद लोग एक गुफा में घुस गये। करीब आध घंटे बाद अष्टांगवक्र अकेला बाहर निकला। मुण्डकोटि जानता था कि यह उसी ओर से ही जायेगा। अतः उसने

स्त्री का पूर्ण परिचय जानने का निश्चय किया।

रोशनअली समझता था कि शायद यह लावण्यमयी फिर उधर से ही निकले, अतः तब तक वह भी उत्कंठा से वहीं खड़ा रहा।

अष्टांगवक्र के आते ही उसका रास्ता रोक-कर मुन्डकोटि ने कहा—"अष्टांगवक्र ! यह क्या बात है ? यह स्त्री कौन है ?"

अष्टांगवक्र झट से बोला—"यह स्त्री कौन है, क्या तुम्हें यह ही मालूम नहीं ?"

मुन्डकोटि—"नहीं, यह कौन है ? कहां से आई है ?"

अष्टांगवक्र—"कुछ हरिण हरिणियां तो शिकारी के जाल में कपट से जा पड़ते हैं और कुछ अपने आप ही मौत के मुँह में जाते हैं।"

मुँडकोटि—"तो यह फँसाई हुई हरिणी नहीं है, स्वयं चल कर आई है ?"

अष्टांगवक्र—"हां, अपने बच्चे को लेकर मौत के मुँह में स्वयं आई है, अब पश्चाताप भी कर रही है।"

मुण्डकोटि—"यह कहां से आई है ? किसकी है ? क्यों आई है ?"

अष्टांगवक्र—"राजा की है। अपने घर से आई है। मौत खींच लाई है।"

मुण्डकोटि—"अष्टांगवक्र, आज तो तू बड़ी चातुरी से बातें कर रहा है। आज तक तो ...."

अष्टांगवक्र—(बीच में ही) अरे भाई ! संकट में चतुरता भी

काम नहीं आती। उसका होना न होना बराबर है।"

थोड़ी देर तक मुण्डकोटि चुप रहा, फिर बोला—"पर मुझे सीधे-सीधे इसका हाल बताओ।"

अष्टाँगवक्र ने थोड़ा चुप रह कर उत्तर दिया—"अगर मैं तुम्हें न भी बताऊँ तो कपालेश्वर सारा हाल बता देगा। अतः बता ही देता हूँ।" ऐसा कहकर उसने सब हाल बता दिया।

अष्टाँगवक्र की बात दोनों बड़े एकाग्र-चित्त होकर सुनने लगे। मुण्डकोटि की समझ में रोशनअली कुछ समझ ही न रहा था। पर रोशनअली के चेहरे पर गौर करने से पता चलता था कि वह प्रत्येक बात अच्छी तरह समझ रहा है।

अष्टांगवक्र का वर्णन समाप्त होते न होते कपालेश्वर आ पहुँचा।

तेरहवां परिच्छेद

विमला और मुण्डकोटि

अष्टांगवक्र और मुण्डकोटि में क्या रहस्यपूर्ण बात चल रही है, यह जानने की कपालेश्वर की इच्छा हुई। जो मनुष्य प्रत्येक क्षण षड्यंत्र रचने में लगा रहता है अगर वह दो आदमियों को अकेले में धीरे-धीरे बातें करते देखता है, तो उसे सन्देह होता है कि वे मेरे बारे में ही बातें कर रहे हैं। अष्टांगवक्र को म्लेच्छ-भाषा का ज्ञान नहीं था, अतः उसकी बात रोशनअली नहीं

समझता। पर मुण्डकोटि से अष्टांगवक्र क्या कह रहा है? उसने क्षण-भर सोचा कि वह पूछे या न कि वे क्या बात कर रहे थे। फिर उसने न पूछने का ही निश्चय किया। वह केवल मुन्डकोटि से बोला—"हम पर विपत्ति आ रही है। पर उससे घबराने की जरूरत नहीं। हां, सावधान अवश्य रहना चाहिये। देखो तो सही, ये वेद धर्माभिमानी राजा लोग स्वयं चंडी के उपासक होकर हमसे छल करना चाहते हैं। क्यों भला? क्योंकि हम मांस का हवन करते हैं और चंडी की प्रिय वस्तु चंडी को अर्पण करते हैं? वहां से मुण्डमालेश्वर आया है। इस दुष्ट चांडालिन के पति और पिता ने हमें पकड़ कर नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर ली है। वैतरिणी के किनारे धौम के आश्रम में वह मंडली मौजूद है, ऐसी खबर वे लाये हैं। मालिनी के तीर पर भी कुछ सेना दिखाई दे रही है। ऐसी परिस्थिति में हम क्या करें, मैं इसी उलझन में पड़ा हूँ। अपने मंत्रबल से हम अपनी रक्षा तो कर लेंगे, पर हमारी तपोभूमि का क्या होगा? मुण्डकोटि, इस समय कोई युक्ति तो खोजनी ही पड़ेगी।"

"युक्ति क्या करनी है? यहां से चलकर गांधार में आश्रय लें। फिर शान्ति होने पर पुनः इस जगह पहुँच जायँगे।" मुण्ड-कोटि ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया।

कपालेश्वर—"यह तो ठीक है। पर प्रत्येक बार भाग जाना कहां की युक्ति है? मेरी इच्छा तो है कि गुरुजी एक बार उन्हें अपना प्रभाव दिखा दें। हम उनके राज्य में जाकर तो कुछ लेते

हैं नहीं, उल्टे वे ही हमारी जगह छीन कर हम पर जुल्म करना चाहते हैं।"

इस पर मुण्डकोटि हँस कर बोला—"अगर सोचने से ही विपत्ति टल जाय तो कौन नहीं टालना चाहेगा ? पर पूरी सेना की सेना को नष्ट कर डालने की सिद्धि हममें अभी तक नहीं आई है। तभी तो इतनी चिन्ता है न ?"

कपालेश्वर—"तुम कुछ भी करो मुण्डकोटि। तुम्हें न मालूम क्या हो गया है। उत्साह बढ़ाने वाली बातें तो तुम करते ही नहीं। उत्साह-हरण करनेवाली बातें करते हो। जब तुम्हीं—हमारे स्तम्भ लोग ही-ऐसी बातें करोगे तो हमारा उत्साह भंग होने में क्यों देर लगेगी ? तुम ऐसा मत बोला करो।"

"कपालेश्वर !" मुंडकोटि एक दम बोल पड़ा—"तुम जो कह रहे हो सो ठीक है; पर वस्तुस्थिति को छिपाना कहां का न्याय है ? तभी मुझे जो ठीक जँचता है, कहता हूँ। मैं व्यर्थ ही उत्साह बढ़ानेवाली बातें करूँगा तो उससे उल्टा नुक़सान ही होगा।"

कपालेश्वर इस पर कुछ न बोला। दूसरे व्यक्ति से वह म्लेच्छ भाव में बोला—"हमारी बात आपने जरा भी न समझी। हम पर बड़ा संकट आगया है। हम उसी पर विचार कर रहे हैं। क्या करें, कुछ सुझाई नहीं पड़ता। वह संकट बिल्कुल करीब आ गया है।"

"क्या संकट है ?" रोशनअली ने उत्कंठा पूर्वक पूछा, "हमारे हाथ से कोई मदद हो सके तो कहिये।"

"नहीं, आप के हाथ से मदद नहीं मिल सकती।" पर बीच में ही मुँडकोटि बोल उठा—कपालेश्वर, तुम भी उस राजा को क्यों व्यर्थ चिढ़ाते हो? जब तुम उसकी स्त्री, पुत्र अर्थात् वारिस को ही यहां ले आये हो तो क्या वह छुड़ाने भी न आयेगा? बुद्धिमानी तो इस बात में है कि विमला और उसके पुत्र को वैतरिणी के तीर जाकर छोड़ आओ। उन्हें भी हमारे मंत्रों का चाव लग गया है। कल जयचँद गद्दी पर बैठेगा, तो वह हमारा ही होगा।"

"मुण्डकोटि", कपालेश्वर चिल्ला कर बोला—"अब तुम कुछ भी ज़बान से न निकालो। इस विमला को मैं छोड़ दूँगा? उसे विधवा बनाकर उसके हाथों... ...जाने दो, तुम्हें क्यों बताऊँ वह लम्बी कहानी? अगर हमारी इच्छानुसार कुछ न हुआ तो मैं इसे विजयपाल, या अनंगपाल के हाथ न पड़ने दूँगा। इसे रोशनअली के हाथ म्लेच्छ राजा के पास भिजवा दूँगा। उसका नाश करूँगा। देवी को नहीं, तो दैत्यराज को ही भेंट......"

उसकी यह निष्ठुर बात सुनकर मुण्डकोटि बड़े आश्चर्य से देखने लगा। क्या यह बातें करनेवाला कपालेश्वर ही है? उसे बड़ी बेचैनी मालूम पड़ी, पर हृद्गत बातों को छिपाने का प्रयत्न करके वह बोला—"कपालेश्वर, तुम्हारे मन में ऐसे विचार आयेंगे, यह सम्भव नहीं।"

कपालेश्वर से इतना कहकर रोशनअली की ओर देखकर वह म्लेच्छ भाषा में बोला—"कुछ लोग ऐसे होते हैं कि दूसरों को

व्यर्थ ही दिखाना चाहते हैं कि वे निर्दयी हैं; पर हृदय से वे उदार होते हैं। हमारे कपालेश्वर भी ऐसे ही जीव हैं। जो बातें इन्होंने अभी कहीं हैं उनमें से एक भी मन से नहीं, यों ही कह दी हैं।"

रोशनअली यह सुन कर कुछ न बोला। केवल सिर हिलाकर रह गया। कपालेश्वर उस पर कुछ बोलने जा रहा था; पर ओठ हिलाकर रह गया। फिर कुछ न बोलने का निश्चय करके वह थोड़ी देर चुप रहा। अनन्तर मुण्डकोटि से बोला—"मुण्डकोटि, रोशनअली से मुझे एकान्त में कुछ बातें करनी हैं। तुम कहीं दूसरी जगह चले जाओ—जरा गुरुजी के पास हो आओ—कोई चार घंटे के लिये चले जाओ। हम जो बात करेंगे तुमसे छिपाना नहीं चाहते। पर तुम कुछ समझोगे ही नहीं। उनकी और अपनी मंत्रसिद्धि की तुलना करनी है। तुम्हारी सिद्धि अभी यहाँ तक नहीं पहुँची है, इसलिए कहता हूँ कि चार घंटे हमें यहां रहने दो। इस अष्टांगवक्र को भी ले जाओ। चार घंटे के बाद आ जाना। फिर तुमसे भी मुझे बड़ी बातें करनी हैं। तुझे कई बातें बतानी हैं, पर·········" मुण्डकोटि ने गर्दन हिलाई और मर्मभेदी दृष्टि से अष्टांगवक्र की ओर देख कर बोला—अष्टांगवक्र; तू पूरा पागल है—मैं आधा। अभी हमें सिद्धि प्राप्त नहीं हुई। उनकी बराबरी करके क्यों व्यर्थ चक्कर में पड़ें। तेरी मेरी पटेगी भी। चल मेरे साथ आ। हम जरा घूम-फिर आयें।"

इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ। बेचारा अष्टांगवक्र भी साथ चल पड़ा।

उन दोनों को गया देखकर कपालेश्वर अपने यवन मित्र की ओर देखकर म्लेच्छ भाषा में बोला—"आपने मुण्डकोटि को यह तो नहीं बताया कि मेरा-आपका पूर्व-परिचय था ?"

"नहीं, नहीं; जरा भी नहीं। पर वह बड़ा चतुर है। कहीं भांप न गया हो, कह नहीं सकता।"

"नहीं नहीं, वह क्या भांप पायेगा। परन्तु उसे न बताने का कारण यह है कि वह आजकल मेरी इच्छानुसार पूरी तरह से नहीं चल रहा है। दूसरी कोई बात नहीं है। बाकी विश्वास के लायक है। विश्वासघात नहीं कर सकता; पर पहले आप यह तो बताइये ....."

"इसके पहले ही मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। यह स्त्री कौन है ?"

रोशनअली की बात सुनकर कपालेश्वर तीक्ष्ण दृष्टि से उसका चेहरा देखने लगा। वह थोड़ी देर में बोला—"कौन-सी स्त्री की बात करते हैं ?"

रोशनअली शान्तिपूर्वक बोला—"कौन-सी स्त्री के क्या माने ? अभी आप जिस स्त्री की बात कर रहे थे।"

"अरे बाबा ! हम कहां किस स्त्री के बारे में बात कर रहे थे। किस स्त्री के बारे में बताऊँ ? स्त्री क्या हमारी देवी के ....."

"मैं भले ही म्लेच्छ हूं, पर आपकी भाषा मैं कुछ-कुछ समझता हूँ, बिलकुल नहीं समझता, ऐसी बात नहीं। अतः आप स्वांग न रचिये। किसके बारे में बोल रहे थे, मैं जानता हूँ।

अभी थोड़ी देर पहले दो जंगलियों के साथ आपने जिस स्त्री को उस गुफा में भेजा था, उसका परिचय दीजिये। क्यों व्यर्थ लीपापोती ········आपस में लीपापोती नहीं करनी चाहिये। बोलिये अब।"

"वह स्त्री? उसे आपने कहां देख पाया? वह उस गुफा में गई, यह आपने कैसे जाना?"

"मेरी आंखों ने देखा और उसके बारे में कानों ने सुना; नहीं तो कैसे जानता?"

"आंखों से देखा? तब तो · ···"

"तो क्या? मैंने उसे देखा और यह भी जान गया कि वह कौन है? पर आप कहते हैं कि आप मुझ पर विश्वास करते हैं। मैं भी देखूँ तो सही।"

"नहीं बाबा, हम ऐसी परीक्षा नहीं देते। अगर एक स्त्री आपने देखी और उसके बारे में मैंने कुछ न बताया, तो क्या इसका मतलब यह है कि आपस का विश्वास ही न रहा। फिर विश्वास करने का···· ··"

"अगर आप नहीं बतायेंगे तब तो मैं और भी परीक्षा लूँगा। जब आप परीक्षा में ही खरे नहीं उतरते तो मैं आपकी सिफारिश बादशाह तक क्यों करूँ? कुछ नहीं, मैं जो पूछता हूँ आपको बताना ही होगा।"

"अच्छा, बताता हूँ। यह कन्नौज के राजा की रानी है। नाम विमला देवी है। मेरी शिष्या है। अभी इसको आये थोड़े ही दिन

हुये हैं, पर जानेको उतावली हो रही है। हम उसको इसलिये नहीं जाने देते कि वह देवी की सेवा करे और हम इच्छित-फल पायें। शायद वह आंख बचाकर निकल भागे, इसीलिये दो जंगली भील उसकी रखवाली के लिये भेजे हैं, और क्या ?"

"ठीक, पर आप उसे यवन बादशाह के पास भेजने की धमकी देते थे, उसका क्या मतलब है ? क्या प्रसंग आने पर आप ऐसा कर सकेंगे ? तुम्हारे इस एक काम से हमारा बादशाह जितना खुश होगा, उतने दूसरे हजारों कामों से भी नहीं।"

कपालेश्वर माथा सिकोड़ कर रोशनअली की ओर देखने लगा। रोशनअली ने उसके चेहरे की ओर जरा भी ध्यान न देकर आगे कहा—"मैं जो कह रहा हूँ व्यर्थ नहीं कह रहा। आप इस पर विचार कर लीजिये।"

"साहब आप भी क्या कहते हैं ? जो सामग्री हम अपनी देवी को संतुष्ट करने के लिये इकट्ठी करते हैं, उसे आप मुझे यवन बादशाह को देने की बुद्धि क्यों सिखाते हैं ?"

कपालेश्वर की यह बात सुनकर रोशनअली हँस कर बोला—"तुम्हारी पत्थर की देवी इस बलि से संतुष्ट होंगी या नहीं होंगी, इसकी तुम्हें क्या खबर है ? पर हमारा जीवित बादशाह ऐसी भेंट से बड़ा खुश होगा और उसी वक्त तुम्हारी इच्छा-पूर्ति करेगा। आज तक की तुम्हारी सब इच्छायें इस एक सामग्री से ही पूरी हो जायँगी। कपालेश्वर, तो वह रानी तो हुस्न की रानी है। मौका न चूक, यही मेरा तुझसे कहना है।"

"अली साहब ! आप यह क्या कहते हैं ? कोई आपका यह कहना सुन सकता है। अच्छा तो यह है कि आप चुप रहिये। आप को हमारी उपासना का मार्ग जानना था, मैंने उसे बतलाने की व्यवस्था कर दी:—आपको हमारे मंत्र जानने थे, उन्हें भी बताना क़बूल किया। अब आप समझते हैं कि आप जो भी चाहेंगे मिल जायगा। अब आप कृपा कीजिए। यह बात छोड़िये विधवा होकर वह हमारी तपोभूमि की अधिष्ठात्री बनेगी। आज वह शोक करती है:—कल अधिकार प्राप्त होने पर शोक भूल……"

"इस अधिकार से हमारे सुल्तान का अधिकार उसे अधिक पसन्द आयेगा। इस काम के लिये किसी दूसरी तरुणी विधवा को मँगवा लो और इन दोनों भीलों के साथ उसे मेरे हवाले करो। तुम्हारी यह भेंट मैं बादशाह को नज़र करूँगा। मैं बादशाह से आग्रह करूँगा कि वह तुम्हारा काम जल्द पूरा करें। तुम उस बात की चिन्ता बिल्कुल न करो।"

कपालेश्वर ने कुछ उत्तर न दिया। रोशनअली उसकी ओर चातुरता से देखने लगा। आगे कुछ न बोला।

बड़ी देर तक कपालेश्वर उसी स्थिति में बैठा रहा—फिर किंचित् हँसकर बोला—"अलीसाहब, आपने मेरा बड़ा मज़ाक उड़ाया। मुझ पागल को भी वह सारी बात सच ही लगी। अब आइये हम लोग पुनः एक बार गुरुजी के पास चलें और आपकी इच्छा के बारे में कहूँ कि यह हमारी उपासना में शामिल होना चाहते हैं। सच बात तो यह है कि गुरुजी महाराज भोले हैं; पर दूसरे शिष्य वैसे नहीं

हैं। उन्हें कैसा लगेगा ? वे 'हां' करने में आनाकानी करेंगे। उन्होंने 'हाँ' भर कह दिया कि काम बन गया। जब म्लेच्छों का शव साधना के काम में आता है तो म्लेच्छ उपासक क्यों नहीं बन सकता ?"

पर रोशनीअली का चित्त इस ओर न था। वह यह बात कपालेश्वर को नहीं दिखाना चाहता था, अतः बोला—ठीक है। आप और आपके गुरु को जो करना हो करिये। फिर हमारा क्या है, वह........."

परन्तु इस वाक्य को आधा ही छोड़कर वह बोला—"चलिये फिर अपने गुरुजी के पास। हमारे बादशाह ने जो-जो कहा है, देखूँ उसके अनुसार आप क्या-क्या करते हैं। आप को जो करना हो, करिये। मुझे जो मार्ग सरल जान पड़े सुझाइये, और क्या ?"

ऐसा कहकर दोनों पुनः अघोरघंट की गुफा में गये। अघोरघंट अब भी पूर्ववत् बैठा था। कपालेश्वर को देखते ही वह बोला—"कपालेश्वर, इस लड़के की मां कहाँ है ? यह तभी से उसकी तलाश में दौड़ रहा है। सारा तपोवन छान डाला; पर पता न चला। तुम उसे कहीं ले गये और......"

परन्तु कपालेश्वर बीच में ही घबरायी आवाज में बोला—गुरुजी, आप इस लड़के और उस मूर्ख के बारे में व्यर्थ क्यों विचार करते हैं ? अपने पर आये संकट का विचार करिये। अनंगपाल और इस लड़के का बाप—दोनों हमारी तपोभूमि को

ध्वंस करने आ रहे हैं। इतना ही नहीं, वे क़रीब आ गये हैं। ज़रा विचार तो कीजिए। इस लड़के और मां की बदौलत ही यह सब संकट आ रहा है।"

"अरे, यह बात है तो इन्हें वैतरिणी पर धौम के आश्रम के पास छोड़ दो। बस काम हो गया। उन्हें कैसे पता चला कि वह यहां आई है? खैर, आई तो आई। अगर उसे पहुँचा दिया जाय, तो वे वापस चले जायँगे। ला, विमला को मेरे पास ला। उसे और इसे-दोनों को प्रसाद दे दूँ।"

"वाह महाराज! आपका भी क्या विचार है? अब तक तो सब ठीक था। विमला को हमारी तपोभूमि के भेद मालूम न थे; परन्तु अब ऐसा नहीं हैं। वह बड़ी धूर्त है, उसने रत्ती-रत्ती भर हाल मालूम कर लिया है। अगर उसके मन में आया, राजा से मिल गई तो हमारा सत्यानाश करवा देगी। महाराजा, उनके आने के पूर्व ही आप महायज्ञ शुरु कीजिये और विमला की बलि दीजिये। चंडी माता संतुष्ट होंगी और हमारा मनोरथ पूर्ण होगा। अब दूसरा मार्ग नहीं है। आज तक किसी ने राजा की महाभिषिक्त रानी की बली देकर माता भवानी को प्रसन्न किया है। आज यह महाकार्य हमारे ही हाथों पूरा होगा।"

अघोरघंट चुपचाप बैठा रहा। उसकी समझ में न आया कि क्या बोले। बड़ी देर तक मौन रहने के बाद वह बोला—कपालेश्वर, विमला हमारी शिष्या है, तू उसकी बलि देने को कहता है?"

"गुरु महाराज, अगर उसके पति की बलि चढ़ाई जाय तब तो चँडिका माँ बहुत प्रसन्न होंगी; पर वह प्रसँग आता नहीं दीखता। विमला अनुकूल होती तो काम बन जाता। उसके मायापाश में ही उसे यहाँ तक खींचा जाता और उसके मस्तक को चँडिका की भेंट दी जाती। वह विधवा होकर हमारे कर्म-योग में सहायता करती। इस लड़के को हम राजगद्दी पर बिठा देते। सभी काम हो जाते; परन्तु उसका चित्त ऐसा नहीं है। वह तो अपने पति के पास जाने के फेर में पड़ी है, फिर हमारा कहना कैसे मानेगी ? अब एक ही उपाय बाकी है। वह यह कि उसकी बलि देकर इस लड़के को अपने पास ही रखा जाय। इसको भी डराते-धमकाते रहना चाहिये। तब यह भी अधिक गड़बड़ नहीं करेगा। महाराज मेरे कहने का अर्थ गूढ़ है; आप समझ लीजिये और क्या कहूँ—मैं जो कह चुका हूँ वही कीजिए······"

पर अघोरघँट बीच में ही उससे बोला—"अरे, सब कुछ तो मैं तेरे कहे के अनुसार ही करता हूँ, पर इस लड़के पर मुझे बड़ी दया आती है। उसके सामने ऐसी बात न कर। इसकी माँ से भेंट करवा दे।"

"इसकी माँ, इन की भेंट के बीच में मैं थोड़े ही आता हूं ? कहीं होगी, आदमी भेज कर बुला लीजिये और भेंट करवा दीजिये।"

तुमने ही उसे कहीं छिपा रक्खा है। सब यही कहते है—तभी तो तुमसे कहता हूँ।"

"मैं ? मैं ? मैंने आज तक आप से छिपा कर कुछ नहीं किया है। आपका मन हो तो उसे आदमी भेजकर खोज कराइये, यहां बुलाइये और वेतरिणी के तीर भेज दीजिये। उसके साथ मुझे भी बँदी बनाकर भिजवा दीजिये। मुझ से पिंड छूटेगा और वे लोग भी आपसे खुश हो जायँगे।"

"ऐसी पागलपन की बात न कर। इन दोनों को भेज देने से हम पर संकट नहीं आयेगा। अगर नहीं भेजा, तो संकट अवश्य आयेगा, मैं यही समझता हूँ।"

अगर आप की समझ से ही आज तक काम लिया होता, तो आपकी व मेरी हड्डी भी खोजे नहीं मिलती। आपकी समझ भी क्या खूब है!"

कपालेश्वर अब अत्यन्त रौद्रतापूर्वक बोलने लगा था।

—चौदहवाँ परिच्छेद—

विमला का साहस

कुछ भी हो, विमला राजकन्या, राजपत्नी और राजमाता थी, संकट आने के समय वह जरा घबरा गई; सोचने लगी। छुटकारे के चार उपाय थे—पहला कपालेश्वर की इच्छानुसार चलना; दूसरा कपालेश्वर से छल करना; तीसरा उपाय था अपनी मदद के लिये किसी को तैयार करना और चौथा कपालेश्वर के किसी शत्रु से मिलकर उसे अपने अनुकूल करना। इसमें से

किसी एक को कार्यान्वित करना चाहती थी। कपालेश्वर अब उसका अनिष्ट करना चाहता है। अब वह उसके किसी भी शब्द पर भरोसा नहीं करेगा, वह इस बात को अच्छी तरह जानती थी। अतः उससे छल करने का विचार मन में आने ही न देना चाहिए था। फिर उसके मन के अनुसार चलने में तो उसका सर्व-नाश ही था! तीसरा उपाय था किसी के हृदय में अपने प्रति दया-उपजा कर उससे काम निकालना, पर ऐसी दयावाला भी वहाँ कौन था? प्रत्यक्ष गुरु महाराज कपालेश्वर की अंजलि से पानी पीने वाले थे। उनसे किसी लाभ की आशा करना व्यर्थ था। अब आगे यह देखना था कि शायद अष्टांगवक्र या भीलों में से कोई अपना साथ दे दे। अष्टांगवक्र से विशेष आशा न थी। वह पूर्णरूप से कपालेश्वर का दास बन गया था, यह स्पष्ट दिखाई देता था। शरीर ही नहीं, उसका मन भी कपालेश्वर का दास था। कुछ दास तो ऐसे होते हैं कि मालिक से कितनी भी प्रेम-हीनता हो; पर अवसर आने पर उसके लिये अपना प्राण दे देते हैं। कुछ ऐसे दास होते हैं जो मालिक के सामने जाते ही सारी अप्रीति और द्वेष मिटाकर उनकी आज्ञा को हर तरह बजा लाते हैं। यह दास ग़रीब था सही; पर जानता था कि कपालेश्वर के सामने उसकी कुछ भी चलने की नहीं। क्रोध आने पर वह न मालूम किस वक्त क्या कर देगा। अतः वह डर कर ही मालिक की आज्ञा मानता है। जिस दिन उसे विश्वास हो जाता कि उसके छुटकारे का समय निकट है, वह मालिक के विरुद्ध कुछ भी करने को तैयार हो जाता है।

अष्टांगवक्र भी विमला की निगाह में अपने मालिक कपालेश्वर का ऐसा ही दास था। न तो उसे कपालेश्वर पर श्रद्धा थी न प्रेम उल्टे द्वेष जरूर था। विमला अच्छी तरह जान गई थी कि जिस तरह कुत्ता केवल खाना पीने के लिये मालिक से बनाये रहता है और ज़रा-सा डांटने पर कांपने लगता है, वैसा ही सम्बन्ध कपालेश्वर और अष्टांगवक्र का था। उसे अष्टांगवक्र से सहायता मिलने की ज़रा भी आशा न थी। जिस समय कपालेश्वर किसी के चंगुल में फँस गया, अथवा उस पर विपत्ति आई और जब उसके छुटकारे की कोई आशा न रहेगी तभी अष्टांगवक्र अब तक के अपने भोगे हुये सभी अत्याचारों का पूरा बदला लेगा, लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता वह कपालेश्वर के विरुद्ध कुछ भी न करेगा। हमारा सहायक व्यक्ति कपालेश्वर की बराबरी का होना चाहिये। पर अघोरघंट की उस तपोभूमि में उसे एक भी ऐसा व्यक्ति नज़र न आया। एक-एक करके प्रत्येक शिष्य का चित्र उस ने अपनी आंखों के सामने खींचा; प्रत्येक की उसने अपने मानस-चक्षु से परीक्षा ली; पर कोई साहसी न जान पड़ा। यही नहीं, वे पूर्ण रूप से कपालेश्वर के साथ थे। अतः ऐसी स्थिति में उसने छुटकारे की आशा छोड़ दी। उसकी गुफा के द्वार पर बैठने वाले वैकुंठ और रौद्रमुख ही जब अनुकूल होंगे तब उसका छुटकारा होगा ? पर इन जंगलियों से प्रयत्न करने की कोई युक्ति उसके मन में न आई। वे लोग एक बार अपने अनुकूल हो गये तो पूर्ण सहायता देंगे, इसमें सन्देह नहीं था। अतः उनकी मदद की बात

सोचते-सोचते विमला ने निश्चय किया कि उन्हें बुलाकर अपनी दशा से द्रवित करे। उनके मन में दया आई तो काम हो जायगा। ये जंगली ऐसे ही होते हैं; एक बार दया आगई, तो मेरे प्राण बचाने के लिये अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करेंगे। पर इस बात को शुरू कैसे किया जाय? उनके पास जाया कैसे जाय? वह इसी विचार में पड़ी रही। उसे इसी विचार से छोड़ कर अब हम दूसरी जगह चलते हैं।

कपालेश्वर और गुरुजी में बड़ी तनातनी की बात हो गई थी; पर कपालेश्वर ने सोचा कि गुरुजी से बात करके अपना बल और समय व्यर्थ खोना है। इनसे किसी ने भेद की बात कह दी, तभी शायद विमला को छोड़ने का इतना आग्रह कर रहे हैं। मैं भी अब बाहर से हां में हां मिलाता रहूँगा; पर करूँगा वही जो मुझे करना है। विमला को उसने बता ही दिया था कि तू मेरे हाथ से निकलने की कोशिश करेगी तो तुझे म्लेच्छ राजा के हाथ सौंप दूँगा।

अगर गुरुजी की आज्ञानुसार मैंने विमला को उसके पिता अथवा पति के पास भेज ही दिया तो मेरी क्या धाक रह जायगी? अभी तक हम में से प्रत्येक व्यक्ति मुझे ही गुरु समझता है। अघोरघँट केवल नाम का गुरु है। जो कुछ होता है, मेरी इच्छा से। अघोरघंट के मन में एक बात और जिह्वा पर दूसरी बात होती थी, पर आज सारा भ्रम दूर हो गया। अघोरघँट अपनी ही इच्छा से कर बैठा है। मुझे उसने कहा—"तू पागल

है। तेरी सभी हरकतें मैं जानता हूँ। तू यह मत समझ कि आंख मूँदकर मैं तेरी ही इच्छानुसार सब कुछ करता जाऊँगा।"

अघोरघंट की यह बात कपालेश्वर को बड़ी विचित्र लगी। अघोरघंट कभी मुझसे ऐसी हेकड़ी जताएगा और अपमान से बात करेगा, इसकी उसे कल्पना तक न थी। पर जो असम्भव दिखाई दे रहा था, वही अब प्रत्यक्ष दिखाई देता है। मैं देखूंगा वह विमला को उसके पति के पास कैसे भेजता है? विमला मुझसे इतना उद्दंडपन और तिरस्कार का व्यवहार कर रही है, तब मुझे भी उसे अपने हथकंडे दिखाने ही चाहियें।

कपालेश्वर के मन में इस प्रकार के भयंकर विचार डोल रहे थे। इसी विचार में वह रोशनअली को इशारा करके अघोरघंट के सामने से बाहर लाया। कपालेश्वर अपने निश्चय में इतना अन्धा हो गया था कि बिना यह विचारे कि उसके इस कार्य का अन्तिम परिणाम क्या होगा, रोशनअली के एकदम करीब जाकर बोला—"अली साहब, उस समय जिस बात को न करने का मैंने निश्चय किया था, वही बात अब इतनी जल्दी करनी पड़ेगी, इसकी मुझे कल्पना तक न थी। वैकुण्ठ और रौद्र-मुख दोनों पूर्णरूपेण मेरे पास हैं। अष्टांगवक्र भी वैसा ही है। पर वह मूर्ख है। उसे आगे-पीछे का कुछ विचार नहीं है। अतः उस पर मेरा भरोसा भी नहीं है। पर उन दो भीलों पर हर तरह भरोसा करके जो चाहे सो काम सौंप सकते हैं। आप मुझसे कह रहे थे कि विमला को मैं बादशाह शहाबुद्दीन को भेंट कर दूँ।

उसको यह भेंट मिलते ही मेरा काम हो जायगा। आपकी बात पर मैं विश्वास रखूँ न? अगर आप वचन देते हैं तो उस दुष्टा को मैं आपके हवाले करता हूँ? ये दोनों भील आपके साथ जायँगे। मैं उसे मंत्रबल से बेसुध कर देता हूँ। छः दिन तक वह होश में नहीं आयेगी। मंजिल-दर-मंजिल तय करते जब आप अपने प्रांत में पहुँच जांय, तो उसे पूरी तरह से अपने अधिकार में करके मेरे सेवकों को भेज दें! उस चांडालिनी का अब आप कुछ भी करें, मुझे परवाह नहीं है। मेरी उत्कट इच्छा थी कि उसका उपभोग देवी के कार्य में किया जाय, पर अब वह सम्भव नहीं दिखाई देता। तब मैं तुम्हारी ही इच्छा क्यों न तृप्त करूँ? जाइये। आज इसी क्षण ही उसे ले जाइये—वह भी जान जाय कि जो बात एक बार कपालेश्वर की जबान से निकल जाती है, वह होकर ही रहती है।

इतना कहकर कपालेश्वर बड़े जोर से हँसकर रोशनअली की ओर देखने लगा।

कपालेश्वर अपने मत से बड़े गुप्त रूप से यह मंत्रणा कर रहा था। उसे स्पष्ट मालूम हो गया था कि अब उसका कुछ न चलेगा। अघोरघंट घबरा गया है—उसे धीरज देने से कोई लाभ न होगा! वह विमला और उसके पुत्र को उसके पति के पास भेजकर अपना बचाव करना चाहेगा; पर कपालेश्वर को यह अच्छा न लगा। उसने एक बार तो अघोरघंट से यहां तक कहा कि धीरज न खोइये। इन राजपत्नी और राजपुत्र के बलि की

धमकी देकर विजयपाल से हम उल्टे और कुछ लाभ उठायेंगे। पर अघोरघंट का कहना था कि इन्हें पहले भेज दो और कहला दो कि हम अकिंचन लोग तो धर्म-क्रिया में लगे हैं; आप हमें क्लेश क्यों देते हैं ?· हमें छोड़ दीजिये। आज तक कपालेश्वर और सारी शिष्य-मंडली अघोरघंट को सर्वशक्तिमान् समझते थे। परन्तु कपालेश्वर की भ्रांति थोड़ी-बहुत दूर हो गयी। वह समझ गया कि अघोरघंट को दूसरा ही गुरु मिल गया है; अतः अब वह मेरी बात सुनने का नहीं। ऐसा मन में आते ही विद्रोह करने की भावना से उसने उपरोक्त कथनानुसार विमला को रोशनअली के सुपुर्द करने का निश्चय किया।

यह बात सुनते ही रोशनअली बेहद खुश हुआ। विमला को प्रथम बार देखते ही उसके हृदय में हलचल पैदा हो गई थी—यही नहीं, वह पागल-सा हो गया था। उसने निश्चय किया था कि किसी भी तरह मैं इस तरुणी को अपने हाथ में करके रहूँगा; पर उसकी यह मंशा सुनकर कपालेश्वर ने गुस्सा दिखाया था। किन्तु अब वही सुन्दरी उसके सुपुर्द की जा रही थी—वह इसका तात्पर्य तो न समझ पाया। पर अपने को अपने काम से मतलब, ऐसा सोचकर वह उससे बोला—"कपालेश्वर, जब मैंने पहले यह बात कही तब तुम्हें क्रोध आया था। आखिर तुम्हारी अक्ल ठिकाने आ गई, यह देखकर मुझे खुशी हुई। अब मैं तुम्हें अपनी विद्या में पक्का करूँगा और तुम्हारी दूसरी इच्छायें भी पूर्ण होंगी। कब इसे कैसे मेरे सुपर्द करोगे, यह बताओ ?"

"अरे, इसमें क्या है ? आपको इस की चिन्ता न करनी होगी। रौद्रमुख और बैकुंठ मेरे सच्चे भक्त और दास हैं। मैं उन्हें प्राण दे देने को कहूँ तो भी वे पीछे नहीं हटेंगे। वे उसे उठाकर तुम्हारी हद तक पहुँचा आयेंगे। वहाँ से उसे आप ले जाइये। अब मुझे इस बारे में मगजपच्ची करने का समय नहीं है, जल्दी कीजिये। मैं समझता था गुरुजी इस बात का भेद न पायेंगे, पर गुरुजी तो मेरे मार्ग के रोड़े सिद्ध हुए। अतः अब मुझे उन्हें बन्दी बना कर इच्छानुसार काम करने की बारी आई है। ये सारे शिष्य मेरे तंत्र के अनुसार चलने लगे, तो गुरुजी को विमला की जगह गुफा में बन्द कर इन राजाओं की खोपड़ी तोड़ने में मजा आयेगा। पर अगर शिष्य-मंडली मेरे अनुकूल न हुई, तो यह सब करना असम्भव है। फिर मैं ·····मैं······"

वह आगे जो कुछ कहना चाहता था न बोला, बिल्कुल चुपचाप बैठ रहा।

ऊपर कहा ही जा चुका है कि कपालेश्वर का ऐसा विश्वास था कि ये सब बातें गुप्त तौर पर हो रही हैं, परन्तु वास्तव में यह बात न थी। जिस वृक्ष के पास खड़े होकर ये लोग बात कर रहे थे, उससे दस पन्द्रह हाथ की दूरी पर सांवरी का एक घना वृक्ष था। उसकी ऊपर की एक डाल पर बैठा एक आदमी सारी बातें ध्यान से सुन रहा था। यही नहीं, यह भी उसके चेहरे से प्रकट था कि ये बातें सुनने के लिये ही वह वहां बैठा था। कपालेश्वर की बातें सुनकर उसके चेहरे पर कभी आश्चर्य, कभी

क्रोध और कभी घृणा के भाव आते जाते थे और वह अपने आप बड़बड़ा भी उठता था। जब कपालेश्वर ने विमला को मुसलमान बादशाह के हवाले करने का निश्चय किया तो उसके चेहरे पर क्रोध के भाव स्पष्ट थे। जब कपालेश्वर ने गुरु को बन्दी बनाकर राजाओं का सिर तोड़ने की बात कही तो उसने अर्थपूर्ण भाव से गर्दन हिलाई। सारांश यह कि वह एकाग्र होकर उन दोनों की बातें सुन रहा था।

रोशनअली और कपालेश्वर की बातें सुनकर उसकी नीचे उतरने की उत्सुकता बढ़ी। पर ऐसे उतरने से उन दोनों को उस पर शंका होती, अतः उसने उस पेड़ पर से दूसरे पेड़ पर कूदकर वहां से उतरने का निश्चय किया। अब आगे की बातों से क्या ? जो मुख्य बात थी वह उसे पूरा करने की तैयारी में लगना चाहता था।

उसी दम बन्दरों के समान उसने उस पेड़ पर से दूसरे पर, दूसरे से तीसरे, और तीसरे से चौथे पर छलांग लगाई और उन दोनों से काफ़ी दूर निकल गया। कपालेश्वर ने उसे एक पेड़ से दूसरे पर कूदते हुए देखा; पर लंगूर बन्दर जानकर ज्यादा लक्ष्य नहीं किया और अपनी बात चलाता रहा। अन्त में यह निश्चय हुआ कि रौद्रमुख और बैकुण्ठ विमला को अनजाने में एक औषधि खिला दें और रात को उसे कन्धे पर डाल कर रोशनअली के साथ गांधार को रवाना हो जायँ और उसे वहाँ पहुँचा कर लौटें।

इतने में ही एक शिष्य कपालेश्वर को खोजता-खोजता वहाँ

आया और बोला—"गुरु महाराज ने इसी समय विमला और जयचन्द को उनके पास ले चलने को कहा है।" यह सुनते ही कपालेश्वर का माथा गर्म हो गया और वह उस आदमी से कड़क कर बोला—"जा, जा, वह चांडालिन और उसका लौंडा जहां हों वहां से खोज कर ले जा, मुझे नहीं मालूम वे कहां हैं। गुरु जी से कहो कि आप उन दोनों को लेकर वहाँ तक जाइये और पहुँचा आइये। आपको शर्म नहीं आती कि स्वयं ही अपने कर्म को विच्छेद करने को तैयार हैं? कहां तो गुरुजी कहते थे कि ऐसी अच्छी बलि देने से अपनी कार्य-सिद्धि होगी और आज क्या कह रहे हैं। चला जा, अगर तुम सब को कार्य-सिद्धि प्राप्त करनी हो, तो अब से गुरुजी के फेर में मत पड़ो। अपने में से ही किसी को प्रधान बनाकर कार्य-सिद्धि करो। समझे! ऐसा करोगे तभी तुम्हारी धाक रहेगी। तुम्हारा कल्याण होगा। सब का कल्याण होगा। नहीं तो गुरुजी के डर के कारण तुम लोग भी नष्ट होकर रहोगे।"

उस समय कपालेश्वर को ध्यान ही न रहा कि मैं किससे क्या बातें कर रहा हूँ? वह ऊपर की बात कह कर थोड़ा रुका और पुनः बोला—"अरे मूर्ख, अब गुरुजी के पास न जाकर सभी शिष्यों को जाकर इकट्ठा कर। गुरुजी के घबराने से हमारा कितना नुकसान हो रहा है, इसका विचार कर। मैं ऐसा ही करूँगा। राजा, राजपत्नी, राजपुत्र इन तीनों की एक साथ बलि देने का जब मौका आया है तो उसे गँवाना कहाँ की बुद्धिमानी है?

अब तू गुरुजी के पास वापस मत जा। जो मैं कहता हूँ उसे ही कर, तभी भला होगा। सभी को हवन-शाला में इकट्ठा कर। मैं तेरे पीछे पीछे हो आता हूँ।" ऐसा कहकर कपालेश्वर ने शिष्य को एक ओर भेजा और स्वयं रोशनअली को लेकर दूसरी ओर चला।

★

—पन्द्रहवाँ परिच्छेद—

रोशनअली की प्रसन्नता

जब से विमला को रोशनअली ने देखा था, उसका मन उसके लिये पागल हो गया था। वह अपने आने का ध्येय ही भूल गया और विमला को अपनाने के ही प्रयत्न करने लगा। पर इतनी जल्दी और यकायक वह सौन्दर्यमूर्ति उसके हाथ आ जायगी इसकी उसे कल्पना तक न थी। अन्त में जब कपालेश्वर ने विमला को रोशनअली को सौंप देने का निश्चय किया तो उसे और चाहिये ही क्या था? उसका मन आनन्द-विभोर हो गया। वह नाना प्रकार से कपालेश्वर की प्रशंसा के पुल बांधने लगा। उसे तरह-तरह की दुआएँ दीं; आश्वासन दिये और बादशाह से अमुक राज्य दिलवाने का वचन देने लगा। पर कपालेश्वर का मन इन प्रशंसा-भरे शब्दों, वाक्यों की ओर न था; वह तो प्रतिशोध लेने के विचार में था। वह पूर्णरूपेण अपनी इच्छानुसार ही सब काम चाहता था। अतः उसने रोशनअली से कहा—"मैंने विमला को

आपके हाथ आपकी तृप्ति के लिये नहीं सौंपा है—सौंपा है अपना प्रतिशोध लेने के लिये। अतः आपने जो वचन दिये हैं, चाहे पूरा करें या न करें, मुझे इसकी परवाह नहीं है। जिसकी आज तक मैंने सेवा की उसी ने दूसरे के बहकावे में आकर मुझे दूर फेंक दिया—मुझे इसी बात पर क्रोध आया है। विमला को आपके हाथ में देने के बाद मैं क्या करूँगा, यह आप देख ही रहे हैं। सारी योजना मैंने घड़ ली है। गुरुजी को गुफ़ा में क़ैद कर उन चारों को दिखाऊँगा कि चंडी के उपासकों को छेड़ने का क्या फल होता है? आपके सामने ही मैं इन लोगों को अपनी इच्छानुसार आज्ञा दूँगा। परन्तु ये सब लोग गधे के बच्चे हैं, इनके मस्तक में चिढ़ तो पैदा ही नहीं होती। मैं पैदा करने की कोशिश करूँगा तभी मेरी विजय होगी।"

इतना कहकर उसने रोशनअली के कान में कुछ कहा और रोशनअली वहां से चला गया। जाते समय उसने फिर अनेक दुआएँ और आश्वासन दिये और उससे कहा कि मैं अमुक जगह आपकी राह देखूँगा। इसके बाद दोनों दो ओर गये। कपालेश्वर थोड़ी दूर जाकर ज़रा रुक गया और विचारमग्न होकर अपने माथे पर हाथ फेरने लगा। फिर अपने साथ के शिष्य के कन्धे को ज़ोर से झकझोर कर बोला—"अरे मूर्ख, यह षड्यंत्र पूरा होना ही चाहिये। तुम्हारे जैसे गधों के हाथ से ही अगर यह काम मैंने पूरा कराया तो सच्चा कपालेश्वर हूँ। यह चांडालिन भी अब मुहम्मदी मज़हब वालों के चंगुल में फँस गई, अब छूटने की नहीं।

अब मैं अपना दाव चलूँगा। मूर्खों, अगर तुम मुझ पर थोड़ा विश्वास रखोगे तो जिस तरह से आचार्य चाणक्य ने अपने मन के राजा को मगध की गद्दी पर बिठाया था और अपना अपमान करने वाले नंद की दुर्गति की थी वैसे ही मैं भी करूँगा। पर तुम्हारी मदद चाहिये। तुम्हें अपना मूर्खपन छोड़ना होगा।" ये बातें वह शिष्य को लक्ष्य करके नहीं कह रहा था, बल्कि स्वयं से भी कह रहा था। थोड़ी देर में ही उसने शिष्य के कान में कुछ कहकर उसे अघोरघंट के पीछे लगा दिया और स्वयं उस गुफा की ओर चला जहां विमला को कैद कर रखा था। वैकुण्ठ रौद्रमुख यमराज के समान गुफा के द्वार पर बैठे थे। उसे जो कुछ कहना था उसने उनकी भाषा में कह दिया। वह कोई ऐसी बात कह रहा था जो उन्हें पसन्द न थी, ऐसा उनके चेहरे पर से दिखाई दे रहा था। वे बीच-बीच में कुछ पूछते जाते थे, फिर हाथ जोड़कर उसकी इच्छा पूर्ण करने के लिये हुँकारी भरते जाते थे। थोड़ी देर ऐसा ही चलता रहा—फिर कपालेश्वर ने अपने चेहरे का भाव बदला, चेहरे में मोहकता लाकर विमला के सामने खड़ा होकर बोला—"विमले, अभी तक मैं तुमसे गुस्से में आकर बातें करता था, अब तुम वे बातें मन से निकाल दो। मुझे क्षमा करो। दो घँटे में अंधकार होने के बाद भीलों के साथ जाओ। यहाँ अब क्षणभर न रहो। हमारे गुरु अघोरघंट की मति फिर गई है। मैं जो बात विनोद के रूप में तुमसे कहता था, वही करने का अब गुरुजी ने निश्चय कर लिया है। उस विधर्मी

सिद्ध-पुरुष रोशनअली से गुरुजी उसकी मंत्र-विद्या सीखना चाहते हैं—अब अपनी यह इच्छा पूरी करने के लिये तुझे वे उसके हाथ सौंपने का निश्चय कर चुके हैं। मैंने उन्हें बहुत कहा कि आप ऐसा अनाचरण न करें; पर वे सुनते ही नहीं। आज मध्यरात्रि को तुम्हें वे उसको सौंपने वाले हैं, फिर पता नहीं क्या होगा, मैं कह नहीं सकता। वह ऐसी भयंकर बात है कि याद आते ही मेरे रोंगटें खड़े हो जाते हैं। मैं तुम पर क्रोधित था सही पर यह अनर्थ सुनकर सारा क्रोध भूल गया हूँ और मैंने तुझे सुखपूर्वक तेरे पिता के पास भेजने का प्रबन्ध कर दिया है। विमला तुम मेरी शिष्या हो, मुझे तुम पर क्रोध था; पर मुझे यह न मालूम था कि तुम अपने शरीर के साथ यह अन्याय करोगी। मेरी क्रोध की बातें भूल जाओ। मैं जैसा कहता हूँ वैसा करो। अब तक तुझ पर पहरा देने वाले रौद्रमुख और बैकुंठ ही अब तेरे सहायक होंगे। मैंने उन्हें सब बातें समझा दी हैं। वे तेरे साथ मार्ग-दर्शक बन कर तुझे तेरे पिता के पास पहुँचा देंगे। उन पर अविश्वास मत करना। मुझ पर इस तरह से अविश्वास की दृष्टि से न देखो। मैं पहले ही जानता था कि तुम मुझ पर विश्वास नहीं करोगी। अतः मैं स्वयं तुम्हें वस्तु-स्थिति से सावधान करने आया हूँ। तुम ज़रा भी सन्देह न करो; नहीं तो स्वयं अपनी भूल से आपत्ति में पड़ोगी।"

कपालेश्वर की यह बात विमला सशांकित भाव से सुन रही थी। यह बात स्वाभाविक थी ही। अब तक जो आदमी उस से

इतनी क्रूरतापूर्वक पेश आता था, वही अब प्रेम से बातें कर रहा था—अगर उसे आश्चर्य हुआ तो उसमें कोई अनोखी बात न थी। उसकी वह सशंकित मुद्रा देखकर कपालेश्वर हँसकर बोला—"विमले, तुम्हें आश्चर्य होने में नई बात नहीं है। पर अब आश्चर्य करके गुपचुप बैठने का समय नहीं है। तुम एक बार यहाँ से छूटकर अपने पिता और पति के पास पहुँच जाओ तो वहाँ खुशी से आश्चर्य करती बैठी रहना। मैं भी फिर एक बार वहाँ आकर तुम्हें गुप्त रूप में मिलूँगा। तब तुम मेरी प्रशंसा की बात अपने पति से कहकर मुझ पर उनकी कृपा-दृष्टि रखवाना। पर अब बिना देरी किये चली जाओ, समझी। अब मैं यहाँ ज़रा भी न रुकूँगा। रुकना पागलपन होगा। गुरुजी महाराज को शंका होगी और भंडाफोड़ हो जायगा। तुम्हारे लिये सब तैयारी हो चुकी है, इसके बाद जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं कर ही क्या सकता हूँ? जैसी तुम्हारी मर्ज़ी।"

इतना कहकर उसने उस पर एक तीक्ष्ण दृष्टि फेंकी। उस समय कपालेश्वर की मुद्रा इतनी विलक्षण थी कि उसे सन्देह हुआ कि वह जाग रही है अथवा स्वप्नावस्था में है। वह कुछ समझ ही न पाती थी। आखिर, कपालेश्वर मुझे संकट से बचाने की युक्ति क्यों बता रहा है? अगर वह संकट से बचाने के बदले मुझे धोखा दे रहा हो तो? तथापि वह कुछ बोली नहीं। उसने अपने मन में अपनी योजना तो बना ही रक्खी थी। वह युक्ति क्या थी, यह पाठकों को अपने आप आगे चल कर मालूम होगा।

कपालेश्वर के जाने के बाद उसने एक बार फिर सारी बातें सोचीं। कपालेश्वर की बात से उसे कपट की आशंका हो रही थी, पर बीच-बीच में वह यह भी सोचती थी कि शायद कपालेश्वर को अपने व्यवहार पर पश्चाताप हुआ हो। पर क्यों हुआ? कुछ भी हो, उसने अपनी ही योजना से अपने छुटकारे का प्रबन्ध करने का निश्चय किया। कपालेश्वर उससे कह गया था कि तुम्हारे जाने का समय आयेगा तब मैं तुमसे मिलूँगा। फिर शंका की गुंजाइश कहां थी! वह यही सब बातें सोच रही थी कि पहले उसकी योजना देखूँ या उसके पहले ही अपनी योजना कार्यान्वित करूँ? आखिर उसने निश्चय कर लिया।

—सोलहवां परिच्छेद—

भयंकर वन

एक ऐसा घना जंगल था कि कोई चार क़दम भी सीधा नहीं जा सकता था। दोपहर के समय भी भगवान् भास्कर की किरणें उसकी डालियों को भेद कर नीचे नहीं पहुंच पाती थीं—ऐसा था वह वन। हिमालय के जंगलों में जो चार कदम भी गया हो वही ऐसे जंगल की कल्पना कर सकता है—दूसरा कोई नहीं। जंगल ऐसा था कि अगर आकाश से बड़े पत्थरों की भी वर्षा होती तो वे वृक्षों की डाल पर ही रह जाते। ऐसे गहन वन में कितने पशु-पक्षी रहते होंगे, इसका क्या ठिकाना! आदमी तो

नामोनिशान को भी न मिलते थे; पर जिस समय कि हम बात कह रहे हैं उस समय यह बात न थी। कारण एक ओर कुछ लोगों के बोलने-चालने की आवाज़ सुनाई देती थी। मनुष्य ज्यादा न थे, आवाज़ से केवल तीन मालूम होते थे। बीच-बीच में घोड़ों की टापों की आवाज़ भी आती थी। उस आवाज़ की सीध में जाने पर हम सांवरी के एक बड़े वृक्ष के पास पहुँचे जहाँ तीन आदमी बैठे थे और थोड़ी दूर पर उनके तीन घोड़े बँधे थे। घोड़े काबुली थे और बैठे हुए लोग म्लेच्छ मालूम पड़ते थे। वृक्ष के नीचे एक ओर एक छोटी गद्दी बिछी थी और उस पर बैठकर एक आदमी हुक्के की आग प्रज्ज्वलित कर रहा था। बाकी दो सामने ज़मीन पर बैठे थे। देखने से ही सन्देह होता था कि किसी षड्यन्त्र की बात चल रही है। सभी के चेहरे पर आतुरता दिखाई देती थी।

बड़ी देर तक तीनों चुपचाप बैठे रहे। बीच-बीच में केवल हुक्के की गुड़गुड़ाहट की आवाज़ आती थी। पर थोड़ा समय ऐसे ही बीतने पर गद्दी वाला आदमी बोला—"क्यों रे, यह आदमी कितने दिन तक हमें ऐसे ही बैठाये रहेगा? केवल बात जानने के लिये गये हुए उसे इतने दिन हो गये? कुछ हाल-चाल तो पहुँचवाना था। मुझे ऐसा नहीं लगता कि हिन्दुस्तान के जादूगर हमारी जादू विद्या की आशा से उसकी बातों में आवेंगे। यह व्यर्थ की आशा है। उनके जादू की विद्या क्या कम है? पर यह भी उस्ताद है। उनके पेट से निकाले बगैर नहीं रहेगा? हमें

मिल गया तो वह अपना हो जायगा। उसका राजा भी हमारा गुलाम हो जायगा। किसी के छुटकारे की कोशिश करनेवाले ये लोग नहीं हैं।"

तीसरा आदमी अब तक कुछ न बोला था, चुपचाप उनकी बातें सुन रहा था। अपनी बात कहकर गद्दी पर बैठे हुए आदमी ने सम्मति के लिये उसकी ओर देखा। वह कोर्निश करके बोला—"खुदावंद, आपका अनुमान बिलकुल ठीक है। गिरे हुए आदमी को बचाने की अक्ल इन हिन्दुओंमें नहीं है; जो गिरा सो गिरा। खुदावद ने इन लोगों का जो यह सुराख ढूँढ़ निकाला है—एकदम दुरुस्त है।"

खुदावंद कहा जाने वाला आदमी यह बात सुन हँसकर बोला—"तुम लोगों की भी वही राय है। ठीक है। सिर्फ राय देने से ही काम चल जाता तब तो तुमसे हमें बड़ी मदद मिलती। पर राय देने के बदले कुछ काम करो। राय देने में तो हिंदुस्तान वाले भी कम नहीं हैं। हम यहीं बैठते हैं अथवा धीरे-धीरे आगे की ओर सरकेंगे, पर तुम आगे-आगे जाकर अब्दुल्ला, लतीफ़ की कोई खबर लाओ। मेरे साथ एक आदमी ही काफ़ी है। मुझ से दूर जाकर कोई करिश्मा दिखाओ। अब मैं सोते जागते जो भी विचार करूँगा उस पर तुम्हारी राय ले लिया करूँगा। अभी राय की जरूरत नहीं है। काम करो।"

ये सब बातें उस दूसरे व्यक्ति को लक्ष्य करके कही गई थीं। वह थोड़ा खीझ गया; पर ऐसी बातें सुनने का उसका यह पहला ही प्रसंग न था। हमेशा ऐसी ही बातें सुनने का वह आदी बन गया था। पर अबकी बार उसे अच्छी

तमाचा लगा। उसके लगते ही उसने बिना विलम्ब उठ कर कहा—"खुदावन्द आपके हुक्म भर की देर है। देखिये मैं कहां छलांग नहीं मारता। आपने अब तक हुक्म दे दिया होता तो उनकी खोज में मैं सारे प्रदेश उनकी राह देखता......"

पर आगे बोलने की कोई जरूरत नहीं है, ऐसा मालिक के चेहरे से साफ दिखाई दिया। उसने बोलना वहीं छोड़ दिया और कंधार की टेढ़ी तलवार हाथ में लेकर उठ खड़ा हुआ। "खुदावंद, आपका बंदा चला। उन दोनों को जल्द ही लाकर हाजिर करता हूँ। आप जरा भी फ़िक्र न करें।"

ऐसा कहकर वह अपने घोड़े के पास गया और उसे थपथपा कर धीरे से बोला—"बच्चा, हम लोग कितने भी थक गये हैं; पर जो टेढ़े हैं सो टेढ़े ही हैं। मेरी जरा भी इच्छा न थी पर क्या करता? जैसे तेरी इच्छा की परवाह मैं नहीं करता वैसे ही मेरी इच्छा की परवाह मेरा भी मालिक नहीं करता। 'जाओ' कहे तो जाना ही पड़ता है, नाक-भौं सिकोड़ने से क्या लाभ? उस नौकर ने भी वही जवाब दिया था, जो मैंने दिया; पर उसे कोई फटकार नहीं पड़ती। जाने दो, जब तक नौकरी करनी है, ऐसा ही करना पड़ेगा। खरा और हितैषी सेवक पाने के लिये मालिक में भी गुण की जरूरत है।"

यह सब वह अपने-आप बड़बड़ाता रहा—और घोड़े पर सवार होकर मालिक को दूर से ही कोर्निश करके पुनः बिना पूछे "क्या हुक्म है? क्या करूँ?" चलता बना।

मालिक उसकी ओर देखकर गर्दन हिला रहा था; बोलता कुछ न था। सेवक ने सवार से चिल्लाकर कहा—"निशानी का पत्थर याद रख; नहीं तो धोखे में तू न मालूम कहां का कहां चला जाय। इस पहाड़ के रास्ते और जंगल बड़े भयानक हैं।"

उसकी यह बात सुनकर सवार ने कोई जवाब न दिया; केवल घोड़े को एड़ लगाकर दूर निकल गया। उसे एक तरह से छुटकारा मिला। उसे गया देखकर गद्दी पर बैठा हुआ मनुष्य नीचे बैठे हुए मनुष्य से बोला—"वह समझता है कि मैं उस पर नाराज़ हूँ। काम तो कुछ नहीं करना चाहता; केवल बातें करना जानता है। उसे यहां चुपचाप बैठने के लिये तो लाये नहीं हैं। अब मेरा मन तो उसे खूब छकाने का है। देखो कहां जाता है? गया तो ठीक है; न गया और किसी गढे में गिर पड़ा तो भी हमारा कोई हर्ज नहीं है।" इतना कहकर वह हँसने लगा। इस पर उस सेवक ने हां में हां मिलाई और कहा—"आपने उसे साथ लेकर उदारता दिखाई, नहीं तो वे लोग उसे कहीं का न रखते। आपकी ही दया से वह जीवित है।"

परन्तु मालिक का ध्यान उसकी आख़िरी बात पर न था। उसका दूसरी ओर लक्ष्य था। कुछ खड़खड़ाहट की आवाज़ सुनकर वह उठ खड़ा हुआ और इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगा। उनका अन्दाज़ा ठीक था—उनके घोड़ों ने भी किसी प्रकार की आवाज़ सुनकर कान खड़े कर दिये।

क्या है? किस चीज़ की आवाज़ है, यह देखने के लिये वे

लोग स्वयं इधर-उधर डोलने लगे। अब आवाज़ और भी स्पष्ट हो गई और वे स्वयं उस आवाज़ की ओर बढ़े। उन्होंने घोड़ों को वहीं छोड़ा और पत्थर के बताये हुए निशानों को देखते हुए आगे बढ़े।

परन्तु उन्हें ज्यादा आगे न जाना पड़ा। थोड़ी ही दूर पर एक विकराल म्लेच्छ उनकी निगाह में आया। वह बड़ा लम्बा चौड़ा पुरुष था। उसके हाथ पैर मुग्दर-जैसे थे और प्रथम दृष्टि में वह आदमी नहीं, पूर्व जन्म का कोई दैत्य मालूम पड़ता था। तभी तो वह मनुष्यों की बस्ती से दूर इस ओर जंगल में चल रहा था। अस्तु।

यह विकराल मनुष्य लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चला आ रहा था। जंगली-जानवरों के समान उसकी जीभ थी जो उसके खुले हुए मुँह से बाहर निकल-निकल आती थी। हमारे दोनों गृहस्थों को देखते ही वह उनकी ओर लपका और करीब आने पर लम्बी कोर्निश की। काफ़ी देर तक यह स्तब्ध खड़ा रहा। दोनों ने जान लिया कि वह बड़ी तेज़ी से दौड़ता हुआ आया है, तभी इतना हांफ रहा है। अतः उन्होंने उससे आते ही प्रश्न नहीं किया। खुदावंद कहा जाने वाला व्यक्ति उसके बिलकुल क़रीब गया और जिस तरह मालिक अपने कुत्ते को पुचकारता और थपथपाता है उसी तरह उसने भी करके कहा—"क्यों रे गुलाम अब्दुल्ला, ऐसी तेज़ी से दौड़ता क्यों आ रहा था? थोड़ा धीरे-धीरे चलता तो तेरी यह हालत न होती। अब पहले ज़रा आराम से साँस

ले ले, फिर सारी बात बताना। मुझे सुनने की जल्दी नहीं है। तेरे चेहरे पर से दिखाई दे रहा है कि तू कोई खुशी की बात बताने के लिये ही दौड़ा आ रहा है।"

उस पुचकार और थपथपाहट से अब्दुल्ला बड़ा खुश हुआ। वह अपना सभी श्रम भूल गया मालूम पड़ता था। वह उसी दम बोला—"खुदावंद, सचमुच ऐसा ही समाचार है। अजमेर की रानी—अजमेर की रानी—कहीं की रानी और उसका लड़का—हमारे क़ब्जे में आ गये हैं। एक पहर के अन्दर वे लोग हमारे सामने आ हाज़िर होंगे।

★

—सत्रहवाँ परिच्छेद—

अब्दुल्ला की बात

अब्दुल्ला की बात सुनकर उन दोनों को स्वर्गप्राप्ति का सा आनन्द मिला। खुदावंद कहे जाने वाले ने अब्दुल्ला की पीठ पर एक धौंस जमाते हुए कहा—"तू पशु का पशु ही बना रहा, हम भी तुझे पशु समझकर ही ऐसे कामों पर भेजते हैं। तुझे एक बार जो काम कह दिया, तू उसे तत्काल करने दौड़ता है—आगे पीछे कुछ तर्क-वितर्क नहीं करता। जिस तरह से पक्षी को पत्र देकर कह दिया कि उस जगह ले जा और वह आँख मूँदकर वहीं ले जाता है, वैसा ही तेरा भी हाल है। पर क्यों रे, किस देश की रानी, वह अपने लोगों के हाथ में कैसे आई, इसकी जानकारी भी हासिल की कि नहीं?"

अब्दुल्ला हड़बड़ा गया। वह ऐसे सवाल की आशा नहीं कर रहा था। जिसने उसे जितना काम करने को कहा, वह उतना ही करता था—आगे पूछताछ करने की उसमें बुद्धि न थी। अतः वह क्या जवाब देता? पर मालिक को केवल रानी के कब्जे में आने की बात से ही संतोष नहीं मिलने वाला था—वह आगे बोला—"ठीक ठीक बता, कहां की रानी है और अपने कब्जे में कैसे आई है?"

पर अब्दुल्ला को स्मरण कहां रहा? वह 'कहीं की रानी, कहीं की रानी' ही कहता रह गया। अन्त में मालिक ने उससे कहा—"अरे अभी तू अजमेर की रानी और उसका लड़का कहता था न?" तब वह बोला—"जो भी मैंने पहले कहा हो वही सच था। अब मेरे ध्यान में नहीं है। कहीं की रानी और उसका लड़का है, मुझे इतना ही ध्यान है। जो कुछ मालूम था, आपकी ख़िदमत में अर्ज किया। अब क्या कहूँ? अब हुक्म हो तो दौड़ता हुआ जाऊँ और उनसे पूछकर आऊँ कि खुदावन्द ने पूछा है कि कहां की रानी और लड़का है? वह मंडली अभी गुफ़ा से ज्यादा दूर तक न आई होगी। मैं फिर जाकर उनसे पहले आ सकता हूँ। एक भील रास्ता दिखाता आ रहा है और एक उन दोनों को कंधे पर लादे हुए है। जाऊँ क्या? बात की बात में जाऊँगा। जो कुछ जवाब वे देंगे लेकर जल्द हाज़िर हो जाऊँगा।"

पर मालिक और उसके साथी का ध्यान इस ओर न था। वे आपस में ही कुछ बोल रहे थे।

"इसने जो बात बताई है वह दर-असल मुफ़ीद साबित न होगी। हमें जो बात चाहिये थी उसका तो कुछ हुआ नहीं, उलटे वह किसी राजा की रानी पकड़ लाया है। उलटे लेने के देने पड़ जायँगे। यह जानते ही सब राजा बिगड़ खड़े होंगे और हमारा जो ध्येय है वह किसी हालत में भी पूरा नहीं होगा। किसी भी रानी या राजपुत्र को अधीन कर लेने से क्या लाभ है? रोशनअली बड़ा बेवकूफ है। मैंने उसे किस काम से भेजा और उसने क्या काम किया? कौन जाने उस दुष्ट कापालिक ने किस स्त्री और उसके पुत्र को रानी और राजपुत्र कह कर उसे सौंपा है।"

इतना कहकर मालिक ने एक आह भर कर फिर कहा—"आदमियों को जिस काम से भेजा जाय वे वह न करके जब दूसरा काम करते हैं तो मुझे बड़ा क्रोध आता है। जिस काम के लिये भेजे जायँ वही करना चाहिये; दूसरा कोई भी नहीं। उस कापालिक से मंत्र सीखने का बहाना करके उसके पेट से जो-जो बातें निकालनी थीं, उसे छोड़कर बीच में यह क्या झंझट खड़ा कर दिया? यह कुछ न होगा। अब्दुल्ला, तुम अभी जाकर उनसे कहो कि तुमने जिस किसी रानी को पकड़ा हो, उसे तुरन्त छोड़ दो और खास काम को कितना किया है, यह बताओ और कुछ नहीं। हमें एक बार इस मुल्क में प्रवेश मिल गया तो छप्पन हज़ार रानियां और सुन्दरी राजकुमारियां मिलने में कठिनाई न होगी, पर अभी से यह क्या शुरू कर दिया?"

खुदावंद की यह बात उसके साथ का आदमी सिर झुकाये बड़ी नर्मी से सुन रहा था। पर उसे उसकी बात ज़रा भी पसन्द न आई; किन्तु वैसा दिखाना तो असम्भव था। अतः वह कोर्निश करके ही चुपचाप रहा। अब्दुल्ला को क्या? वह तो हुक्म का नौकर था। वह जाने लगा। पर दूसरे नौकर के मन में यह आया कि उसका जाना अब ठीक नहीं है, अतः वह बोला—"खुदावन्द, आप बजा फ़रमाते हैं; पर अगर उस देवी के पकड़ने से ही कोई कार्य सिद्ध होता हो, तो उसमें ख़राबी ही क्या है? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि अपने हाथ में फँसे हुए शिकार को अगर इस तरह बड़प्पन दिखाकर छोड़ देंगे और ठीक जगह पहुँचा देंगे, तो लोगों का विश्वास हम पर बढ़ जायेगा। आप ही विचार कीजिए। मेरी अर्ज़ है कि उसे यहां तक एक बार आने दीजिये; और उसका मान-सम्मान करके उसे उसके राज्य में उसके शौहर के पास भेज दीजिये। तब छोड़ने पर अपना जो उदारपन और बड़प्पन साबित होगा वैसा ऐसे छोड़ने पर नहीं। हमें ऐसे ही यहां बैठे रहना चाहिये। कौन लोग हैं; किसको लाते हैं; इसकी राह देखें। तभी सब बातें साफ होंगी। जो कुछ इस नाचीज़ की अक्ल ने ठीक समझा, अर्ज़ कर दिया। हज़ूर इस पर ग़ौर फ़र्मायें।"

दूसरा आदमी उसकी बात सुनकर हँस पड़ा और बोला—"तुम बिल्कुल फजूल तो नहीं बोल रहे हो। पर सब कुछ अपनी ही इच्छानुसार थोड़े ही होगा। कुछ विघ्न पड़ गया तो?"

"विघ्न क्या पड़ेगा" दूसरे ने नम्रता से पूछा।

"क्या विघ्न पड़ेगा ? ऐसे वक्त हजारों विघ्न पड़ते हैं, किस एक विघ्न का नाम लूँ ! उसकी खोज के लिये आये हुए लोगों ने हमारे आदमियों पर हमला कर दिया तो ? तब तो उल्टे हमें अपने कार्य में ही विघ्न दिखाई देंगे। फिर कहीं हम ही क़ैद कर लिये गये तो ?"

"आपको क़ैद करने की किस काफ़िर में हिम्मत है। ऐसे इन्सान ने अभी पृथ्वी पर जन्म ही नहीं लिया है। आप ऐसा क्यों कहते हैं ? आप इतने थोड़े आदमियों को लेकर यहां तक हिम्मत से आये केवल घबरा जाने के लिये ? खुदावंद की मंशा इस गरीब का इम्तहान लेने की है, नहीं तो खुदावंद के दिल में अपने पकड़े जाने का डर कभी आ ही नहीं सकता।"

खुदावंद अनुचर की बात सुनकर हँस कर बोले—"अच्छा रहने दे अब्दुल्ला। व्यर्थ कुत्तों की तरह दौड़ता न फिर। हम भी यहीं खड़े रहते हैं और देखते हैं क्या मजा आता है।"

इतना कहकर वे लोग वहीं रुक गये और इधर-उधर देखने लगे। थोड़ी ही देर में पैरों की आहट सुनाई दी। मालिक ने कुछ पूछने के विचार से अब्दुल्ला से पूछा—"क्यों रे अब्दुल्ला, कौन-कौन लोग आ रहे हैं ? क्या अभी आ जायंगे ?"

अब्दुल्ला ने तुरन्त जवाब दिया—"वे लोग अब दूर नहीं होंगे। वह भील, उसके साथ रखवाली वाले दो भील और रोशनअली साहब को छोड़कर और कोई नहीं है। उस भील के

कन्धे पर वह सुन्दरी और उसका लड़का ये दोनों हैं। वह परी रो रही थी; पर रोशनअली ने उस पर मंत्र-प्रयोग करके उसे सुला दिया है। खुदावंद, वह ऐसी खूबसूरत है—ऐसी खूबसूरत है कि क्या कहूँ? आपने ऐसी खूबसूरत कहीं न देखी होगी।"

"हां, तुझे भी खूबसूरती और बदसूरती की तमीज़ है? बड़ी पहचान वाला बन गया तू तो! पर क्यों रे वह लड़का कितना बड़ा है? ये लोग कहाँ के हैं?"

"शायद हस्तिनापुर के राजा की प्यारी बेटी और नाती हैं जिसे वह गद्दी पर बैठाने वाला है। वे ही दोनों हों, तो बड़ा अच्छा है। पर दूसरी लड़की और उसका लड़का भी हो सकते हैं। पर मैं तो समझता हूं वह राजा की प्रिय लड़की ही है........"

"हां हां, यह उनमें से एक है। यह देखो खुदावन्द के सामने हाजिर हैं। इतनी जल्दी मुझे यह सुप्रसंग मिलेगा, आशा न थी, पर हो गया खुदावन्द, आपकी आज्ञा लेकर मैं जिस काम के लिये गया था वह तो एक ओर ही रहा; पर यह शिकार बीच में ही हाथ आ लगा। उसे मैं अपने मंत्र से बेहोश करके लाया हूं। इसने मेरे पंजे से छूटने के कितने उपाय किये, पर वह कपालेश्वर भी क्या उस्ताद है! उसने इसकी एक न सुनी। मेरे अधीन कर ही तो दिया। उसने कहा कि तुम्हारे लोगों के मिलने की जगह तक ये भील तुम्हारे साथ जायंगे। वह इस पर गुस्से हो गया था, नहीं तो किसी भी हालत में हमारे हाथ न सौंपता। पर

कुछ भी हो—हम लोग बड़े भाग्यवान् हैं। पहली ही ऐसी मिली जो अपनी सानी नहीं रखती। इस तरह······"

इतने में ही उस भील ने उस माननीय गठरी को जमीन पर रख दिया। सब लोग उसकी ओर देखने लगे। मालिक बोला—"क्या कहते हो अली साहब, यह उन दो लड़कियों में से एक है! कहीं उस कपालेश्वर ने तुम्हें फँसाकर कोई दूसरी ही औरत तो तुम्हारे हवाले नहीं कर दी?"

"छिः छिः! खुदावन्द उसकी सुन्दरता देखते ही आप जान जायँगे कि वह किसी राजघराने की है—वह भी किसी बड़े राजा की पत्नी। आप इस बारे में शंका क्यों करते हैं? वह कापालिक पूरी तरह से हमारे अधीन है। हमें कभी धोखा नहीं दे सकता। आप उसकी इच्छा-पूर्ति करने में ज़रा भी न हिचकिचायें।"

अली साहब की बात सुनकर खुदावन्द बड़े ग़ौर से उस स्त्री की ओर देखने लगा। उसके सौंदर्य की उसके मन पर गहरी छाप पड़ी, यह बात उसके चेहरे से स्पष्ट झलकने लगी।

—अठारहवाँ परिच्छेद—

विमला का छुटकारा

इस तरह से 'खुदावन्द' कहे जाने वाले व्यक्ति, अब्दुल्ला और उस दूसरे व्यक्ति में बातें हो रही थीं कि मंडली आ पहुँची। एक लम्बा चौड़ा विलक्षण शक्ति वाला भील अपने शरीर पर दो

गठरियाँ सा लादे था, जिनमें से एक में विमला थी और दूसरे में लड़का। उनको देखते ही मालिक ने क्या सोचा और क्या कहा यह ऊपर कहा जा चुका है। मैंने जो कुछ किया उसे इन्होंने पसंद नहीं किया—इस बात का पता जब अली साहब को लगा तो उन्हें बड़ा बुरा लगा। बोले—"खुदावंद, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं—आप ने जिस काम से मुझे भेजा था, वह मैं करके नहीं आया; यह सच है। पर जो काम मैंने किया है उसे मैं बड़ा महत्वपूर्ण समझता हूँ। एक रानी और उसके ज्येष्ठ पुत्र को पकड़ कर लाने पर अब और क्या चाहिए।"

यह सुनकर खुदावन्द जोर से हँसकर बोला—"अली साहब, आप जंतर-मंतर के उस्ताद हैं। आप राजकीय बातें क्या समझेंगे। आप क्या समझते हैं कि आज तक मैं इसी चीज के लिये धड़पकड़ करता आ रहा हूँ। नाना प्रकार के लोगों को इस देश में केवल एकाध स्त्री पकड़ने के लिये भेजा है। तुम जादूगरों की दृष्टि वहीं तक जाती है। एकाध खूबसूरत स्त्री मिल गई तो उसे कुत्ता-बिल्ली बनाकर अपने साथ लिये डोलते हैं। अली साहब, तभी मैंने जो बात इस बेवकूफ से कही वही अब आप से कहता हूँ। मुझे औरत चाहिये जरूर;—पर हाड़-मांस की नहीं। मुझे मिट्टी और पत्थर की औरत चाहिये। ऐसी एकाध धोखे से भगाई हुई औरत मुझे नहीं चाहिये। ऐसा पराक्रम मुझे नहीं चाहिये। मुझे चाहिये ऐसा पराक्रम जिसके बल से मैं हिन्दुस्तान की जो भी तरुणी चाहूँ, मेरे सामने हाजिर की जाय—

नहीं नहीं, उसके माँ-बाप और पति तक उसे मेरी भेंट दे जायँ बेवकूफो, तुम्हारी अक्ल पर पत्थर पड़ गये हैं क्या? मैं तुम्हें एक काम करने को कहता हूँ और तुम दूसरा काम करते हो।"

"खुदावन्द, आपके कहने में और हमारे करने में फर्क कहाँ पड़ा है? आपने औरत को पहचाना नहीं है। यह अजमेर के राजा विजयपाल की पत्नी और यह उनका युवराज है। यह हस्तिनापुर के अनंगपाल की लड़की है और लड़का उनका नाती है। ऐसे मनुष्य जब हाथ में आजायं तो और क्या चाहिये! इसे भ्रष्ट करने की धमकी देकर इसके बाप अथवा पति से मुँह मांगी चीज़ क्या नहीं मांगी जा सकती? खुदावन्द; कपालेश्वर और उसके गुरु में भारी मनमुटाव हो गया है। अतः जो बात हम उनसे जानना चाहते हैं नहीं जान पायेंगे। यह तो अनायास ही अपने हाथ में पड़कर मुफ़ीद साबित होगी। इसमें बुराई क्या है?"

इस पर खुदावन्द बोला—"बुराई और भलाई तो अपने-अपने ख़यालात से जुदा-जुदा होती है। खैर, इसका बुरका हटाइए और नींद दूर कीजिये। आप इतनी तारीफ कर रहे हैं ज़रा उसकी खूबसूरती तो देखूँ! या तुम्हें यह नादानपन की वजह से परी लग रही है। विजय की पत्नी और अनंगपाल की लड़की की खूबसूरती तो देखूँ?"

ऐसा कहकर खुदावंद उठा और आगे सरका। अली साहब भी आगे बढ़कर उसका बुरका हटाकर उसे होश में लाने जारहे थे कि वह भील क्रोधित होकर बोला—"ठहरिये अली साहब,

ख़बरदार आपने हमारी बहन को हाथ लगाया तो ? आप समझते हैं कि आप उसके पवित्र शरीर को जो चाहेंगे कर सकेंगे, पर ऐसा नहीं होने का। मैं अकेला ही तुम चारों के लिये काफ़ी हूँ।" यह बात भील अपनी भाषा में बोला। वे लोग उसका कहना तो नहीं समझ पाए पर जान गये कि वह विमला के शरीर का स्पर्श नहीं करने देगा। क्रोधित हो गया है। अली साहब बड़े ही आश्चर्य से उस भील की ओर देखने लगे। भील बड़ी ही क्रूर मुद्रा से उस शव-जैसे शरीर के पास जाकर खड़ा हो गया था। वह उसकी रक्षा के हेतु जा खड़ा हुआ था और उसने चुनौती दे दी थी कि उसके शरीर को जो भी हाथ लगायेगा, उसके हाथ पैर वह तोड़ कर रख देगा। अली साहब ने उसे देखकर कहा—"मूर्ख, भाग यहां से, क्यों व्यर्थ आफ़त मोल लेता है ? इन दोनों पर से जादू तो उतारने दे। व्यर्थ बीच में पड़ कर जान मत गँवा।"

पर भील ज़रा भी न हिला। जिस तरह से क्रूर परन्तु स्वामि-भक्त कुत्ता अपने मालिक के धन-रक्षण के लिये दाँत निकाल कर गुर्राता हुआ धन हरण करने वाले पर आक्रमण की तैयारी करता है, वही हाल उस भील का भी था। उसका यह दुस्साहस देखकर अली साहब फेर में पड़ गये। कपालेश्वर ने जिसे अपना स्वामिभक्त नौकर कहकर दिया उसी का यह हाल ! उस भील का यह हाल देखकर अब्दुल्ला को भी क्रोध चढ़ आया। उसने सोचा कि शायद भील अली साहब पर आक्रमण करना चाहता है, अतः

बिना कुछ आगा-पीछा सोचे वह भील पर झपट पड़ा।

हिमालय के दो नीलगाय जिस प्रकार परस्पर लड़कर एक दूसरे का प्राण लेने के लिये टक्करें मारने लगते हैं उसी तरह अब्दुल्ला और बैकुण्ठ की लड़ाई शुरू हो गई। बैकुंठ किसी भी तरह विमला के शरीर के पास से दूर हटता ही न था। दोनों को बराबर का जान कर बाकी सब लोग चुपचाप खड़े मजा लेने लगे। खुदावन्द का विश्वास था कि चंद क्षणों में ही अब्दुल्ला भील को जमीन पर पछाड़ देगा। जिस तरह मालिक अपने पहलवान की कुश्ती बड़े चाव से देखता है, वही हाल खुदावन्द का था। उनका विश्वास था कि हमारा अब्दुल्ला क्रूर जंगली पशु है, उसे हराने वाला दुनिया में कोई है ही नहीं। अतः वे उस समय का इन्तजार कर रहे थे जब अब्दुल्ला भील को उठा कर जमीन पर पटक देता। परन्तु एक घंटा हुआ—दो घंटे बीते, उसको जीतना तो दूर रहा, अब्दुल्ला उसे उस जगह से पांच कदम भी न हटा सका। अब्दुल्ला उसके शरीर पर दनादन घूँसे मार रहा था। अंत में उसने घूँसे मारना बन्द किया और जंगली जानवर के समान झपटकर उसकी छाती पर जोर का धक्का दिया। उससे ऐसी आवाज आई मानों कोई चीज पत्थर से टकरा गई हो। पर इस बार भील को भी क्रोध आया, अभी तक वह चुपचाप खड़ा था—उसने हाथ नहीं उठाया था। उसने चिढ़कर अब्दुल्ला की गर्दन अपनी काँख में दबाई और दूसरे हाथ से उसकी टँगड़ी पकड़ने का उपक्रम करने लगा। यह उसकी टँगड़ी पर अपना

पांव रखकर हाथ से दूसरी टँगड़ी पकड़ कर चीरना चाहता था। जिस तरह बिल्ली के पंजे में पकड़े जाने पर चूहिया तड़फड़ाने लगती है, वही हाल अब्दुल्ला का था। अब्दुल्ला लगातार हाथ पैर पटक रहा था। पर अन्त में बैकुण्ठ ने उसके एक पैर पर अपना पैर रखकर उसका दूसरा पैर हाथ से पकड़ लिया।

अब तक सब लोग यह समझ कर मज़ा ले रहे थे कि अब्दुल्ला हारने वाला जीव नहीं है। पर उपरोक्त परिस्थिति देखते ही उन्हें उसकी जान बचाने की चिन्ता हुई। उसी दम अलीसाहब, खुदावन्द और तीसरा आदमी—तीनों भील पर झपटे। पर भील क्रोधांध हो गया था। कहने लगा कि एक अब्दुल्ला के दो अब्दुल्ला किये बिना मैं नहीं रहूँगा। इतने में ही अलीसाहब को अब्दुल्ला की जान बचाने की युक्ति सूझी। वे विमला के पास पहुँच कर उसका शरीर स्पर्श करने के लिये झुके। अब भील ने अब्दुल्ला को एक ओर फेंक दिया और अलीसाहब पर झपटा।

यह देख कर और अच्छा मौका जानकर खुदावन्द ने भील के दो टुकड़े करने के लिये अपनी फरसी उठाई। खुदावन्द भी इस समय क्रोध के मारे भयानक दिखाई दे रहा था। उसकी वह मुद्रा देखकर कोई भी डर जाता। वह फरसी बड़ी भारी थी; पर उसने उसे बड़ी सरलता से उठा लिया था। वह फरसी का भरपूर हाथ भील के सिर पर पटकने ही वाला था कि किसी ने पीछे से हाथ बढ़ा कर फरसी पकड़ ली। उसने मुड़कर पीछे देखा, तो वैसा ही दूसरा भील दिखाई पड़ा, जिसने फरसी पकड़ ली थी।

अब वह अत्यधिक चिढ़ कर उस भील की ओर बढ़ा कि इतने में ही चार छः लोग आ गये। ये लोग भील न थे; ऊँची पदवी धारी दुर्धर्ष योद्धा दिखाई देते थे। उनको देखते ही पहले के सब लोग घबरा गये। उनके मन में आया कि ये लोग इस स्त्री के ही कोई सम्बन्धी हैं। खुदावन्द के हाथ से फरसी लेकर उन्होंने दूर फेंक दी। यह देखते ही खुदावन्द का सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। उसके चेहरे पर से स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि आज तक उसका ऐसा अपमान कभी न हुआ था।

इधर विमला और उसका पुत्र गठरी बने हुए निश्चेष्ट पड़े थे। वे अब हिलने लगे। उनकी निश्चेष्टता अब दूर होने लगी थी। अब अलीसाहब आगे बढ़ कर बोला—"खुदावन्द, देखिये देखिये वह.........,,

परन्तु इतने में ही उन चार-छः क्षत्रियों में से एक, जिसने विमला को पहचान लिया, आगे बढ़ कर बोला—"विमले, विमले! उठ। तेरी यह क्या दशा हो गई है? हम समय पर आगये। इस रौद्रमुख ने तुम्हारा सन्देश देकर हमें यहां बुलाया। उठ, अब तो उठ, यह बालक जयचन्द........."

इतना बोलते ही दस-पन्द्रह क्षत्रिय और आ पहुँचे और उन्होंने म्लेच्छ-मण्डली को घेर लिया। उनके साथ एक पालकी थी। भीलों ने विमला और जयचन्द को पालकी में बैठाया। म्लेच्छ-मंडली यह सब देखकर सन्न रह गई। किस प्रसंग से आये थे और कौन-सा प्रसंग उठ खड़ा हुआ। वे केवल चार आदमी थे और

उन्हें इतने लोग घेरे हुए थे। पर वे कम न थे। उनका मालिक बोला—"आपको हमें घेरने का कोई कारण नहीं है। हम अपनी राह जाते हैं; आप अपनी राह जाइये। इस औरत का हमने किसी प्रकार अपमान नहीं किया—करने का इरादा भी न था। इसको लाने का कोई प्रयोजन नहीं है, यही मैं इन लोगों से कह रहा था। अतः मैं जो कहता हूँ उसे मानिये। आप इन्हें ले जाइये। हम अपने रास्ते जाते हैं। बिना कारण वैमनस्य न बढ़ाइये।"

यह सुनते ही महाराज विजयपाल जोर से हँसकर बोला—"ठीक, ठीक! हमारे घर में घुसकर आप हमारे ही लोगों का अपहरण करेंगे और फिर उल्टा हमें ही वैमनस्य करने के लिये दोषी बतायेंगे?"

"हमने किसी का अपहरण नहीं किया। हम तो शिकार के लिये आये थे। इन लोगों से जरा झगड़ा हो गया था पर मैंने सब शान्त कर दिया था।"

वृद्ध महाराज अनंगपाल तुरन्त बोले—"म्लेच्छ राजा, तू यह बात अगर प्राण बचाने के लिये नहीं कह रहा है तो मैं ठीक मानता हूँ। तुझे तेरी राह पर जाने दूँगा। हम क्षत्रिय राजा हैं, जो हमारी शरण में आकर जान की भिक्षा मांगता है, हम उसे जाने देते हैं।" "महाराज, महाराज!" विजयापाल अपने श्वसुर से बोला—"यह आप क्या कहते हैं? जिसने हमारा सर्वस्व हरण करने का षड्यंत्र किया, उसे आप जीवन-दान देते हैं! देखिये। अपनी कन्या की ओर देखिये। अगर हम पाव घंटे बाद आये

होते तो क्या हो गया होता ? मेरा जयचन्द मुझे छोड़ चुका होता और मेरी..........."

पर अनंगपाल बीच में ही बोले—"विजयपाल, हम लोग कितने हैं और ये कितने थोड़े हैं—ये कहते हैं कि हम शिकार के लिये आये थे, अतः इन्हें छोड़ देना ही न्याय है। अगर झूठ कहते हैं, फिर भी प्राणों की भिक्षा मांग रहे हैं, तो हम क्षत्रिय हैं—उन्हें जीवन-दान का दिया हुआ वचन वापस न लेंगे। वह भले ही झूठ गढ़ी हुई बातें ...."

"पर महाराज, यह शिकारी किसके शिकार के लिये आया था—यह तो पूछिये। महाराज मेरा दिल तो गवाही देता है कि यह हमेशा के लिये शिकार की खोज में आया था। और ऐसे मनुष्य को आप छोड़ देने की बात करते हैं तो क्या कहा जाय ! इन लोगों ने हमारे देश में पांव जमाने के लिये सब षड्यंत्र रचा है, दूसरा कारण नहीं है। यह अब अपने पंजे में है. जरा भी देरी किये बिना हमें......"

"छिः छिः" अनंगपाल ने कहा, जो मुँह से निकल गया, निकल गया। शरणागत को कभी नहीं मारूंगा। उसकी शिकार वाली बात को ही सच मानकर उसे जाने दूँगा—उसका बाल भी बांका न होने दूँगा। म्लेच्छ राजा, भाग जा। अब एक क्षण भी हमारी आंखों के सामने खड़ा मत रह। तू म्लेच्छ राजा है, यह मैं अच्छी तरह पहचान गया हूँ। अब मैं तुझसे म्लेच्छ भाषा में कहता हूँ कि अगर तू अपनी जान बचाने के शिकार का बहाना

कर रहा है तो अब सचमुच भागकर अपना बचाव कर। मैं तेरी जान को कोई नुकसान नहीं होने दूँगा।"

अनंगपाल के ये शब्द म्लेच्छ राजा को बड़े कटु लगे—यह उसके चेहरे पर के भाव से स्पष्ट था। तीन बार उसका हाथ तलवार की मूठ पर गया; पर तीनों बार उसने हटा लिया। उसने जान लिया कि इस समय तलवार चलाने में हमारा ही नुक़सान है, अतः वह कड़ुवा घूंट पी गया।

महाराज अनंगपाल ने अपने आदमियों का घेरा हटा दिया और म्लेच्छ राजा अपने आदमियों को लेकर जल्दी से खिसक गया।

—उन्नीसवां परिच्छेद—

उपसंहार—अंकुरोद्भव

विमला ऐसे भयंकर संकट से छूटकर पति के पास आने पर बड़ी खिन्न रहने लगी। उसे अपने कर्म पर पूरा पश्चात्ताप हुआ। कहां अपनी चातुरी दिखाने गई थी कहां मुश्किल से जान बच सकी। अब वह किसी को मुँह न दिखा पाती थी। पिता अथवा पति ने उसे कोई भी कटु शब्द न कहे। उन दोनों ने यह सोचा कि वह जिन कठिन परिस्थितियों से गुजरी, यही उसके कर्म की सज़ा थी। बात भी अक्षरशः सत्य थी; उसके पश्चात्ताप

से दग्ध मन ने उसे जितनी सजा दी उतनी पति के कठोर वचन अथवा कोई दूसरा दण्ड नहीं दे सकता था। उसे रह-रह कर ऐसा लग रहा था कि अगर उनका छुटकारा न हो पाता तो उसकी और उसके पुत्र की क्या हालत होती? उसकी सभी महत्वाकांक्षाओं का क्या होता और उसकी क्या दशा होती? ऐसी बातें याद करके उसके रोम-रोम कांप जाते। अब वह किसी के सामने नहीं निकलती थी, न ही किसी दास-दासी को अपने सामने आने देती थी। बहुत ही ज़रूरी काम होने पर एकाध दासी ही उसके पास जा सकती थी। हर क्षण वह अकेले ही रहती और उपरोक्त बातें ही सोचा करती थी। मैंने अपने-आप अपने को फंदे में फँसाया। अगर पति और पिता न पहुँच जाते तो मेरी और मेरे पुत्र की क्या दशा होती? कितने ही दिनों तक तो उसने जयचन्द अथवा चामुण्डराय को अपनी आंखों के सामने नहीं आने दिया। पति ने भी उसकी प्रत्येक आज्ञा को मानने का सबको हुक्म कर दिया था। जयचन्द को मां से बड़ा प्रेम था; पर जब मां ही उसे अपनी आंखों के सामने नहीं आने देना चाहती थी तो वह क्या करता?

ऐसे ही चार महीने बीत गये। राजा अनंगपाल का पत्र आया कि पृथ्वीराज को राजगद्दी देकर तपोवन जाने का मुहूर्त निश्चित कर लिया गया है। ऐसे शुभ मुहूर्त पर मेरी इच्छा है कि आप सब अवश्य आवें। इस पत्र को पढ़कर विजयपाल ने जाने का निश्चय कर लिया; पर उसकी समझ में न आया कि

विमला से क्या कहें ? अगर उसे बताये बिना दोनों लड़कों को ले जाते हैं तो विमला को अच्छा न लगेगा। यह बात बता दें तो पता नहीं कि उसे सन्तोष होगा अथवा पुराना द्वेष भड़क उठेगा। अतः उन्होंने निश्चय किया कि यह बात विमला तक पहुँचने ही न पाये। मुहूर्त करीब था, अतः देरी करना उचित न था। तुरन्त ही सब सामान जुटाकर हस्तिनापुर जाने का निश्चय किया। उन्होंने यहां तक निश्चय किया कि विमला को पृथ्वीराज के राज्यारोहण की गन्ध भी न मिले। पर यह सम्भव न था। हस्तिनापुर से कितने ही पत्र आये। फिर क्या था, चारों ओर बात फैल गई। सभी दास-दासियों के मुँह पर यही चर्चा थी। विमला की वेणी सजाने वाली दासियों ने भी यह समाचार सुना और उससे उसका अतिरंजित वर्णन किया। वर्णन यही था कि किस तरह की तैयारी हो रही है और राजा को कितने आग्रह से बुलाया गया है। यह पापिन रोज ही कोई न कोई समाचार लाती थी; पर विमला उसे सुनाने ही न देती—बीच में ही रोक देती। पर आज उस दासी ने उसके आज तक के मौन का बदला लिया। दासी सोच रही थी कि रोज विमला मुझे बीच में ही बोलने से रोक देती है; पर आज देखूँगी कैसे रोकती है ? उल्टे तरह-तरह के प्रश्न करके जान खा जायगी। अतः उसने आते ही कहा—"महारानी जी, पृथ्वीराज राजा हो गया। आपके पिता ने वही किया जो आप कहा करती थीं। आप सभा में जायंगी क्या ? मेरी मौसी के पति का पत्र आया है कि

ऐसा समारम्भ कभी किसी ने न देखा होगा, तुम भी आओ। पर देवीजी जब आप जायँगी तभी हमें भी जाने को मिलेगा। महारानी जी, आप भी अवश्य चलें, महाराज भी जायँगे। दोनों राजपुत्र भी जायंगे। आप भी तैयारी कर लें। पृथ्वीराज तो सार्वभौम सम्राट् हो गया, पर अपने महाराज राजकुमार जयचन्द तो···"

पर विमला ने उसे बीच में ही चुप रहने को कहा—"क्या कहती है? पृथ्वीराज के हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठने का समारोह हो रहा है? और यहां से लोग जा रहे हैं?" यह बात उसने इतने उद्वेग से और कपाल ठोक कर कही कि उसके मनकी भीषण व्यवस्था का साफ़ अन्दाजा लग गया। उसके बाद उसने एक लम्बी सांस छोड़ी और दासी की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखने लगी। तब दासी जरा घबराकर बोली—"महारानी, मेरे कानों ने जो बात सुनी; उसे मैं आपसे बताये बिना कैसे रह सकती हूँ? अनंगपाल महाराज ने देवी कमला के पुत्र को ही सारा राज्य क्यों दे दिया? हमारे जयचन्द राजा को भी आधा दे देते तो क्या बिगड़ जाता? पर महाराज का चित्त तो······पर मैं यह सब क्या कह रही हूँ? मुझे इससे क्या लेना-देना है? आप मुझे बीच में ही रोक देती थीं; पर आज मुझ से रहा न गया। चुप कैसे रह सकती हूँ? जब मेरे ही मन में······"

दासी बोल रही थी; पर विमला का ध्यान उसकी बात की ओर न था। वह अपने मन में ही कोई विचार कर रही थी। विचार करते-करते बीच में ही वह बोली—"क्या रे? क्या

कहती है ? वहां जाने की तैयारी चल रही है। जयचन्द को ले जाने की तैयारी हो रही है ? कहां तक हो चुकी है ?"

"तैयारी का क्या पूछना ? जोरों से जारी है। हजार-पांच सौ लोग जायंगे। पर महारानी जी, आप भी चलिये न ! आपके चलने से हमें भी ऐसा समारोह देखने का सौभाग्य मिलेगा। नहीं तो ऐसा अवसर कब आयेगा ? कभी नहीं आ सकता। महारानीजी, हम दासियों की इतनी इच्छा तो पूर्ण कीजिये। हमें अकेले कौन जाने देगा ? आपके चलने से दस सौ सवा सौ दासियां भी चल सकेंगी। मैं सच कहती हूँ सभी दासियां चाहती हैं कि आप चलें।"

"रहने दे ! जब मेरी इच्छा के अनुसार चलने का दिन आयेगा, तभी चलूंगी। अब तू यहां से चलती बन। आज वेणी भी मत बांध। मुझे जरा एकान्त में बैठने दे। बाहर खड़ी रह और कोई आये तो उससे कह दे कि आज मैं किसी से नहीं मिलूँगी। चल जा, तेरी वहां जाने की इच्छा हो तो चली जाना। मेरी परवाह न कर। मैं तो हतभागी हो गई हूँ, किसी को मना क्यों करूँ ? मुझे मेरे पास कोई नहीं चाहिये। समझ गई न ! मेरी जितनी भी दासियां हों सभी चली जायँ। जरा भी हिचकिचाहट मत करो। अब सार्वभौम राजा का सिंहासन देखने जाओ और वहीं रहो। हम छोटे और अधीनस्थ राजा के राज्य में क्यों वापस आओगी ? जा, रुक क्यों गई। मैंने कहा था न कि इसी वक्त चली जा। चल उठ, यहां मत बैठ। तुझे समारोह देखना है

न ? जा। किस शान से मुझसे कहने आई है······”

विमला बराबर बोलती जा रही थी। दासी घबड़ा गई—कुछ न बोली। विमला और भी चिढ़ कर बोली—“मैं कहती हूँ, चली जा। खड़ी क्यों है, भाग। मुझे अरे—दो घंटे अकेली बैठने दे। मुझे भड़का मत। मेरे सामने से हट जा—हट, जा, बाहर जा।”

यह सुनते ही बेचारी दासी बाहर चली गई। वह समझ गई कि यहाँ से हट जाने में ही अब कुशल है। विमला आज तक किसी को क्रोधित नहीं दिखाई दी थी। आज इतनी देर की दबी हुई आग भड़क उठी थी। बहिन ने पिता पर सम्मोहन मंत्र डाल कर अपने पुत्र के लिये हस्तिनापुर का राज्य ले लिया। जो हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठा वह सम्राट् हो गया। उसने कपट से अपने पुत्र को सम्राट बना लिया। मेरे इतने दिन चुप बैठी रहने के कारण ही उसने अपना काम बना लिया। विमला को इस तरह से चुप बैठी रहने का पश्चात्ताप हुआ। आज की विलक्षण बात से उसका दिमाग खराब हो गया था। वह पुनः अपने पुराने स्वरूप पर आ गई। मेरे पुत्र को कुछ न देकर उसके लड़के को हस्तिनापुर का सिंहासन दे दिया। अपने से अधिक कमला पर बाप का प्रेम देखकर उसकी ईर्ष्या फिर भड़क उठी और ऐसा मन हुआ कि इसी वक्त हस्तिनापर पहुँचकर उससे झगड़ा शुरू कर दे। पर यह चाव थोड़ी देर तक ही रहा। बीच में जो घटनायें घटित हो गई उसके कारण उसे अभी और भी अज्ञातवास में रहना पड़ेगा। इससे यही हुआ कि उसके स्वभाव में थोड़ा फ़र्क

आगया। ऊपर के भाव क्षणिक थे।

विमला के चित्त की ऐसी स्थिति हो गई कि उसे यह पता भी न चलता था कि वह क्या करे और क्या न करे। वह पहले की सुप्त ईर्ष्या फिर जागृत हो गई और इतनी बढ़ी कि आज तक उसे चुपचाप बैठी रहना ही इसका मूल कारण मालूम हुआ। अज्ञात-वास और उसके सब कारण वह भूल गई। उसके चुप रहने पर ही पिता ने यह अन्याय किया है। नहीं तो जयचन्द को आधा, चौथा भाग तो मिलता। पर उस बात से मैं लज्जित होकर बैठी रही, इसीलिए आज यह प्रसंग देखने को मिला। स्त्रियों का मन जितना चंचल होता है, उतना ही निश्चयी भी। धौम आश्रम से आने के बाद उसे जो पश्चात्ताप हो रहा था, उसका ही लाभ उठा कर उसकी बहिन सम्राट् की माता बन गई, उसका सर्वनाश हो गया। अब वह उल्टा अपने कर्म पर और भी पछताने लगी! अब उसने समारोह में जाकर पिता से अपने पुत्र को भी प्रांत या राज्य का कुछ हिस्सा दिलाने का निश्चय किया। "मेरे लड़के को छोड़कर मुख्य सिंहासन छोटी बहिन के बेटे को दे रहे हैं तो अब कुछ प्रांत तो मेरे लड़के को दो।" यह कहने का विचार कर वह हस्तिनापुर जाने की तैयारी करने लगी। पर यह विचार कितनी देर टिकता? तुरन्त ही उसके मन में दूसरे विचार आने लगे। आज तक मैं एकांतवास में थी, अतः कोई मेरी बात जबान पर भी न लाता था। दुनियां एक तरह से मुझे भूल ही गई थी। पर मेरे बाहर जाते ही अपवाद और लोकनिन्दा जोरों से शुरू हो

जायगी। इस समय क्या होगा ? कुछ लोग ती उंगली उठाकर हँसेंगे भी। पति ने मेरा त्याग नहीं किया अतः पति की निन्दा भी करेंगे। वह ऐसी ही बातें सोच रही थी। अब उसके जाने से पुत्र को कोई लाभ न होगा, उल्टा अपमान होगा। अतः इस समारोह में जाने का विचार भी मन में न लाना चाहिये। अगर जयचंद मेरा लड़का है, तो इस कुटनी के पुत्र पृथ्वीराज से लड़कर क्षत्रियोचित पराक्रम से हस्तिनापुर का साम्राज्य क्यों न लेगा ? अब पिता के पास जाकर उनसे भिक्षा मांगने की अपेक्षा मैं अगर जयचन्द का मन पृथ्वीराज के विरुद्ध उभार दूं, उसे समझा दूँ कि पृथ्वीराज ने वह राज्य अन्याय से लिया है, उसके पास से छीनने का प्रयत्न करो। तब कहीं अधिक काम होगा।

यह विचार आते ही वह प्रसन्न हो गई। इस समय अपनी नाराजगी इस बात से प्रकट न होगी। अगर मैं वहाँ जाकर कमला से झगड़ा शुरू करूँगी, तो ठीक न होगा। अपना क्रोध दिखाने का उत्कृष्ट मार्ग तो यही है कि मैं उस समारोह में जाऊँ ही नहीं। पर पति और पुत्र को न जाने देने के लिये क्या उपाय किया जाय ? उसका मन इसी विचार में लगा था, पर कोई उपाय नहीं दिखाई देता था। जब वे लोग मेरे बारे में विचार करने को भी तैयार नहीं हैं, तो मुझे उनको बुला कर कुछ कहने का क्या उपयोग होगा ? अन्त में उसने यही निश्चय किया कि जयचन्द को बुलाकर उसे यह सिखा दे कि वह किसी तरह हस्तिनापुर जाने पर राजी ही न हो।

विमला ने उसी वक्त अपने प्यारे पुत्र को बुलाने के लिये दासी को भेजा। दासी को जयचन्द को बुला कर लाने में घण्टे लग गये। इतने समय में उसके हृदय में इतनी उथल-पथल मची रही कि उसने दासी को बुला भेजा कि जयचन्द को कह आए कि वह उसके पास न आये। उसने एक बार फिर निश्चय किया कि बाप से कहूँगी कि क्या यह तुम्हारा नाती नहीं है? अगर वह नहीं जायगी, तो कुछ भी न होगा; नहीं तो कोई न कोई प्रान्त अवश्य मिलेगा। यहाँ बैठने से अपना ही नुक़सान होगा। हस्तिनापुर के सम्राट् को सम्राट् न मानने में ही हमारी विजय है। जो अपने पराक्रम से सबको रौंद देगा वही सच्चा सम्राट् है। खाली हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठने से थोड़े ही कोई चक्रवर्ती सम्राट् हो जाता है? होते-होते उसने निश्चय कर ही लिया कि वह अपने बाप से अपने पुत्र के लिये उसका अधिकार मांगने अवश्य जायगी। दासी को बुला कर उसने कहा कि महाराज से कह दो कि "समारोह में जाने का निश्चय हो गया है, अतः सारी तैयारी करवायें।"

दासी को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे कल्पना तक न थी कि महारानी विमला हस्तिनापुर जायँगी। जब वे स्वयं इस तरह से जाने को राजी हो गई तो आश्चर्य नहीं तो और क्या होता? आज तक तो वे कहतीं थीं कि उस कमला और उसके बेटे का मुंह ही न देखूँगी। कितनी ही बार ऐसी प्रतिज्ञा करके उन्होंने लोगों के कान बहरे कर दिये थे। पर एक बार इतना

आग्रह करने पर भी 'न' किया और अब जाने को तैयार हैं। खैर, दासी को इससे क्या? उसने यह बात महाराज को सूचित करने के लिये उनके महल का रास्ता लिया।

विमला के मन बदलते न बदलते जयचन्द को बुलाने वाली दासी भी आ हाज़िर हुई और बोली—"छोटे महाराज दिल्ली जाने की तैयारी में व्यस्त हैं। वे कहते हैं कुछ भी हो मैं महाराज के साथ दिल्ली अवश्य जाऊँगा। मैंने उनसे बड़ी विनती की कि आप से मिल कर आपकी आज्ञा ले लें; पर कोई फल नहीं निकला। वे हठ पर तुले हुए हैं। मैंने बहुत कहा कि महारानी की आज्ञा का उल्लंघन न करो; पर वे महाराज को छोड़ना ही नहीं चाहते हैं। उनका कहना है कि "अगर मैं यहां से हट कर कहीं भी इधर-उधर गया तो वे मुझे अपने साथ नहीं ले जायंगे। अतः मैं कहीं न जाऊँगा।"

अपने पुत्र की इस बात को सुनकर विमला के मन की क्या दशा हुई होगी, कौन वर्णन कर सकता है? जिस लड़के के लिये मैंने दर-दर ठोकरें खाईं, जब वही मुझे इस तरह का जवाब देता है तो क्या कहा जाय! अब तो मुझे अपना मुँह काला कर लेना चाहिये। मेरा पुत्र दूसरों के फुसलाने में आ गया है। वह अपनी बुद्धि से ऐसा उत्तर कभी नहीं दे सकता। पर उसे ऐसा उत्तर सिखलाने वाला कौन हो सकता है? मेरे पति ही होंगे। इतने दिन तक मैं लज्जित होकर चुपचाप बैठी रही, तब तक उन्होंने उसे मेरे विरुद्ध भड़का दिया और अपनी ओर मिला

लिया। जब उसी पुत्र को मेरे विरुद्ध कहने को तैयार कर लिया जिसके लिये मैंने सब-कुछ किया, तब उसके मन का उद्देश्य यही हो सकता है कि अपनी ओर से उनका मन फिर गया है, ठीक है। मैं अब न तो उस लड़के का ही मुँह देखूँगी और न किसी दूसरे का ही। अब मैं अपनी जगह से हिलूँगी भी नहीं। अगर प्रसंग आया तो गुरु की खोज में उनके आश्रम में जाकर जिन्दगी के बाक़ी दिन व्यतीत करूँगी। जब उस पुत्र का यह हाल है कि वह मुझसे मिलने तक नहीं आया,—बुलाने पर नहीं आया, तब मैं भी उससे कोई सम्बन्ध न रखूँगी। अब मैं केवल इधर-उधर भटकने वाली सी रह गई हूँ। कपालेश्वर मुझ से अपनी आयु-भर वहीं रहने को कहता था—मैंने उसकी एक न सुनी; उसे दुश्मन समझा। वह भले ही निष्ठुर मन से बोल रहा था, पर कह तो रहा था भवानी माता की सेवा करने को ही न! मैंने उसका कहना नहीं सुना तभी तो देवी चंडिका ने अप्रसन्न होकर मेरा ऐसा अपमान तो नहीं किया? नहीं तो मेरी इतनी विचित्र परिस्थिति न होती। अब उत्तम मार्ग तो यही है कि पहले की तरह मैं फिर वहीं चली जाऊँ। अबतक मुझे अपने लड़के का मोह था। अब वह भी अपना नहीं रहा। मेरे बुलाने पर भी उसने 'नहीं आता' कहलवाया। अब इससे और निकृष्ट स्थिति क्या होगी? अब मुझे फिर ऐसा करना है कि फिर कोई मेरा कुछ अपमान न कर सके। दासी के मुँह से जयचन्द ने मेरा इस तरह से अपमान किया। यह बिना किसी के सिखाये नहीं हुआ।

जब पति की ही पुत्र के हाथ पत्नी का अपमान कराने की नौबत आगई, तब एक दिन सभी नौकरों-चाकरों के सामने भी अपना अपमान होने में देरी नहीं है।

× × × ×

सर्वनाश का सूत्रपात हुआ—उपरोक्त प्रकार के नाना विचार करती हुई विमला तर्क-कुतर्क में लीन हो गई। विमला का यह निश्चय भारतवर्ष के सर्वनाश का आरम्भ था। इसके बाद विमला ने जयचन्द् के हृदय में पृथ्वीराज के प्रति विष वृक्ष के बीज बो दिये। बहिनों की यह घरेलू ईर्ष्या एक भयंकर अग्नि की ज्वाला बन गई जिसके फलस्वरूप भारतवर्ष के इतिहास में राष्ट्र-पतन का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ।

यवन तो इस कोशिश में थे ही कि उन्हें भारतवर्ष के राजाओं की परस्पर फूट का लाभ पहुँचे और वह इस स्वर्णभूमि में अपने पांव जमा सकें। हुआ भी यही। यवन-राजाओं के गुप्तचर सारे देश में फैल चुके थे और उन्हें इस घर की फूट का और दोनों घरानों की ईर्ष्या का भी कापालिकों तथा अन्य षड्यंत्रकारियों द्वारा पूरा ज्ञान हो चुका था। धीरे धीरे इसी सुलगती अग्नि ने जयचन्द् को प्रेरित किया कि वह यवन-राजाओं को भारत पर आक्रमण करने के लिये आमन्त्रित करे और उन्हें सहायता का वचन दे। अन्ततः भारत पर यवनों के किस प्रकार आक्रमण हुये और देश में यवन-राज्य का कैसे स्थापन हुआ—पाठकगण,

यह सब बातें साधारण इतिहास के ज्ञान से जानते हैं। हमारा उद्देश्य तो केवलमात्र यह वर्णन करना था कि इस राष्ट्र-पतन का अंकुरोद्भव कैसे हुआ।

हमारे राष्ट्र का इतिहास जहाँ बड़ा उज्ज्वल तथा स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है, वहाँ इसमें फूट के घृणित कृत्यों का भी अभाव नहीं। परन्तु इन देशद्रोहियों के कुत्सित कारनामों से भी हम बहुत कुछ सीख सकते हैं और राष्ट्र के रथ को आने वाले गढ़ों और खाइयों से बचा सकते हैं। राष्ट्र के एकमात्र ध्येय चाहिये—एकता, संगठन और एक केन्द्रीय नेतृत्व !

॥ समाप्त ॥